प्रेमामृत

भारतीय संस्कृति के मार्गदर्शक
मन्त्र तथा श्लोक

सभी सज्जनों एवं विद्यार्थियों द्वारा अवश्य पठनीय

श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी
एवं
विधुशेखर त्रिवेदी

भारतीय संस्कृति के मार्गदर्शक मन्त्र तथा श्लोक

वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार हेतु
श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान एवं
पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ, 6B वृन्दावन, लखनऊ
द्वारा प्रकाशित

मुद्रक. विनायक ऑफसेट, लखनऊ

2015 प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ

श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी
एवं
विधुशेखर त्रिवेदी
I.A.S (अ.प्रा)

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य. 80.00

ओ३म्

पूज्य पिता

स्व. पं. उमादत्त जी त्रिवेदी

एवं

स्नेहमयी पूज्या माँ

स्व. श्रीमती चम्पादेवी त्रिवेदी

की

पावन स्मृति

में

सादर समर्पित

विधुशेखर त्रिवेदी

माता गुरुतरा भूमेः पिता उच्चतरश्च खात् ।

माता भूमि से भी महान होती है तथा पिता आकाश से भी ऊँचा होता है।

स्व. पं. उमादत्त जी त्रिवेदी

एवं

स्व. श्रीमती चम्पादेवी त्रिवेदी

श्री विधु शेखर त्रिवेदी

एवं

श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी

निवेदन

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।
कृ तस्य कार्यि स्य चेह स्फातिं समावह ।।

अथर्व०३।२४।५

सौ हाथों वाले बनकर सम्यक् रीति से धन का संग्रह करो तथा हज़ार हाथों वाले बनकर उसे सम्यक् रूप से फैला दो, दान करो । यहाँ, इस जीवन में अपने किये हुये कर्मों एवं अपने कर्तव्यों के क्षेत्र का अच्छी प्रकार से विस्तार करो।

वैदिक जीवन दर्शन में दान का अत्यन्त महत्व है तथा सभी प्रकार के दानों में वैदिक ज्ञान का दान सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्।। मनु.४।२३३

जल, अन्न, गौ, भूमि, तिल, सोना, घी आदि समस्त वस्तुओं के दानों से ब्रह्मदान अर्थात् वैदिक ज्ञान का दान श्रेष्ठ है।

श्री विधुशेखर त्रिवेदी, जो कि एक अवकाश प्राप्त [illegible] अधिकारी हैं, ने वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार हेतु अपना सर्वस्व दान करके पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ की स्थापना की है जिसमें विद्यार्थियों के लिये निःशुल्क भोजन, आवास एवं शिक्षा की व्यवस्था की है। विद्यापीठ के सफल संचालन के लिये धन की अत्यन्त आवश्यकता है।

अस्तु सभी सज्जनों से विनम्र अनुरोध है कि पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ के लिये यथा शक्ति दान देने की अनुकम्पा करें जिससे वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार का पवित्र यज्ञ भली प्रकार सम्पन्न हो सके।

श्री मती प्रेमा त्रिवेदी
उपाध्यक्ष
पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ
6ठ,वृन्दावन, रायबरेली रोड, लखनऊ

दिनाङ्क 19.08.2015

विषय सूची

क्र. सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१	प्रार्थना एवं स्तुति मन्त्र	१-२२
२	प्रार्थना एवं स्तुति श्लोक	२२-२७
३	ब्रह्म	२७-३२
४	ओ३म्	३३-३८
५	आत्मा	३९-४२
६	वेद	४२-४५
७	धर्म	४५-४९
८	अधर्म	४९
९	सत्य	४९-५२
१०	गायत्री	५३-५४
११	सदाचार	५५-६०
१२	दुराचार	६०
१३	ब्रह्मचर्य	६१-६२
१४	प्राणायाम	६२-६४
१५	यम नियम	६४-६५
१६	योग	६५-६९
१७	मन	६९-७०
१८	दैवी संपदा	७०-७१
१९	आसुरी संपदा	७१
२०	आसुरी स्वभाव	७२-७३
२१	विद्या	७३-७६
२२	अग्निहोत्र	७६-७७
२३	यज्ञ	७७-८०

२४	महायज्ञ	८०-८१
२५	ज्ञान	८१-८४
क्र. सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
२६	अज्ञान	८४
२७	भक्ति एवं उपासना	८४-८७
२८	दान	८७-८८
२९	तप	८८-८९
३०	सन्तोष	८९
३१	धन	९०
३२	शील	९०-९१
३३	गुण तथा अवगुण	९२-९४
३४	दोष	९४-९५
३५	विवेक तथा बुद्धि	९५-९६
३६	तृष्णा	९६-९७
३७	काम एवं क्रोध	९७-१००
३८	माता-पिता-	१०२
३९	पुत्र	१०२-१०३
४०	जीवन	१०३-१०६
४१	नीति	१०६-११२
४२	उद्योग एवं प्रयास	११२-११४
४३	पराक्रम	११५
४४	कर्म	११६-११८
४५	सत्वादि गुण	११९-१२०
४६	परोपकार	१२१-१२२
४७	ब्राह्मण	१२२-१२५
४८	सत्संगति	१२६

४९	कामनायें	१२७
५०	अहंकार	१२८
५१	मित्र	१२९-१३०
५२	संसार	१३०-१३२
क्र. सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
५३	भगवान् की विभूति	१३२-१३३
५४	परमात्मा की प्राप्ति	१३४
५५	माया	१३५
५६	आरोग्यता	१३६
५७	सरलता	१३७
५८	महिलायें	१३७-१३९
५९	श्रद्धा	१३९-१४०
६०	दुष्टों का नाश	१४०-१४१
६१	गौ	१४१
६२	यक्ष प्रश्नों के उत्तर	१४२-१४६
६३	महत्वपूर्ण वाक्य	१४७-१४९
६४	पाप-पुण्य	१४९-१५१
६५	भारतवर्ष	१५१-१५२
६६	सब का कल्याण	१५२
६७	गायत्री उपासना से ब्रह्मप्राप्ति	१५३
६८	राष्ट्रीय प्रार्थना	१५४
६९	सामाजिक जीवन	१५५
७०	तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु	१५६-१५८

प्राक्कथन

आधुनिक समाज में नवयुवकों एवं विद्यार्थियों में भारतीय संस्कृति के प्रति बढ़ते हुये अज्ञान एवं उपेक्षा के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक कल्याण एवं उन्नति तथा बच्चों के चरित्र निर्माण के उद्देश्य से संस्कृत साहित्य के महासागर से कुछ अनमोल रत्न निकालकर यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं ताकि वैदिक ज्ञान एवं भारतीय संस्कृति की ज्योति से हम सभी का जीवन आलोकित हो सके।

इस पवित्र कार्य के प्रेरणास्रोत मेरे पूज्य पिता पं. उमादत्त जी त्रिवेदी वैद्य, शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य हैं, जिनकी ओजस्वी तथा मधुर वाणी से वेद मन्त्र एवं श्रेष्ठ श्लोक सुनकर मेरा बचपन व्यतीत हुआ। उनके पवित्र जीवन एवं मार्गदर्शन से सत्य एवं सदाचार पर आधारित मेरे जीवन का निर्माण हुआ तथा उनकी 'सादा जीवन उच्च विचार' की शिक्षा मेरे जीवन का अभिन्न अंग बनी।

वह सरल स्वभाव के अत्यन्त सदाचारी एवं सत्यवादी विद्वान् ब्राह्मण थे। अपने जीवन में मैने उन्हें कभी असत्य बोलते हुये अथवा किसी के प्रति दुर्भावनापूर्ण अनुचित आचरण करते हुये नहीं देखा। वह संस्कृत एवं आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान् थे तथा वेदों के प्रति उनकी श्रद्धा एवं निष्ठा अनूठी थी। वह नित्यप्रति श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक हवन, पूजन तथा गायत्री मन्त्र का जप करते थे।

मेरी माँ श्रीमती चम्पा देवी त्रिवेदी साक्षात् लक्ष्मी का स्वरूप थीं, भगवान् की भक्ति तथा दान पुण्य करना उनके जीवन का प्रमुख कार्य था। वह बहुत स्वाभिमानी थीं । उनके जीवन में सन्तोष का महत्वपूर्ण स्थान था और उन्हें किसी प्रकार की लालसा नहीं थी। वह एक आदर्श पतिव्रता भारतीय नारी थीं।

माता-पिता के पुण्य प्रताप से ही हम चारों भाई तथा एक बहन जीवन में आशातीत उन्नति एवं सफलता प्राप्त कर सके।

मेरे बड़े भाई डा. चन्द्रशेखर त्रिवेदी, सादगी एवं सम्मान से जीवन व्यतीत करने वाले एक कुशल चिकित्सक रहे हैं। उनके दोनों पुत्र श्री प्रदीप त्रिवेदी तथा संजय त्रिवेदी आज के युग में भी माता पिता की सेवा करने वाले आदर्श पुत्र हैं।

मेरे छोटे भाई स्व. डा. सत्यदेव त्रिवेदी ण्च्ैए, जिनका विवाह लखनऊ हाईकोर्ट के जस्टिस राम आसरे मिश्रा की पुत्री से हुआ था, चमबपंस मबतमजंतलए भ्वउम ळवअजण व िप्दकपं के पद से सेवानिवृत्त हुये थे।

मेरे सबसे छोटे भाई स्व. विश्वदेव त्रिवेदी प्ैए जिनका विवाह राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया की छोटी पुत्री से हुआ था, बीपमि प्दबवउम ज्ंग ब्वउपेपवदमत के पद से सेवानिवृत्त हुये थे तथा मेरी बहन श्रीमती सुधा दीक्षित के

पति श्री सुधाकर दीक्षित राजस्थान विद्युत परिषद् के चीफ़ इन्जीनियर के पद से सेवानिवृत्त हुये हैं।

हमारे साधारण परिवार के ऊपर भगवान् की यह कृपा मेरे माता पिता की ईश्वर भक्ति, गायत्री उपासना तथा उनके श्रेष्ठ पुण्य कर्मों के कारण ही हुयी।

उक्त विवरण से मैं नवयुवकों को केवल यह सन्देश देना चाहता हूँ कि श्रेष्ठ मार्ग पर चलने तथा पुण्य कर्म करने का अच्छा फल अवश्य ही प्राप्त होता है।

इस पुस्तक की विदुषी लेखिका श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी के पूज्य पिता स्व. पं. विद्या प्रसाद जी शुक्ल एक सरल स्वभाव के सदाचारी वरिष्ठ ϖ|ै अधिकारी थे, जो अन्य विषयों के साथ साथ ज्योतिष के भी विद्वान् थे। वह अत्यन्त सादगी एवं इमानदारी से जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति थे जिसके कारण उनके पास धन सम्पत्ति का संग्रह नहीं था किन्तु फिर भी उन्होंने ज्योतिष के अपने ज्ञान, जिसे आजकल के मूर्ख लोग ज्ञान ही नहीं मानते, की सहायता से अपनी नौ पुत्रियों का विवाह ऐसे नवयुवकों से किया जिन्होंने आगे चलकर अपने जीवन में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की।

यहाँ इसका एक उदाहरण देना उचित प्रतीत होता है। जब वह अपनी छोटी पुत्री के लिये लड़का देखने जा रहे थे तब वह मुझे भी अपने साथ ले गये। हम लोग लखनऊ के एक ऐसे श्रेष्ठ किन्तु निर्धन ब्राह्मण परिवार के घर में पहुँचे, जिसे देखकर कोई सोच भी नहीं सकता था कि एक क्पेजतपबज

डंहपेजतंजम अपनी पुत्री का विवाह वहाँ कर सकता था। वहाँ उन्होंने मुझे बताया कि इस लड़के की कुण्डली ऐसी है कि अगर ब्रह्मा भी चाहें तो इसे प्ण्।ण्ैण् में आने से नहीं रोक सकते। तब मैने उनसे कहा कि यदि आपको इतना विश्वास है तो अवश्य विवाह कीजिये।

उन्होंने अपने ज्ञान एवं विश्वास के आधार पर अपनी प्रिय पुत्री का विवाह वहाँ किया और अगले वर्ष ही विजय शंकर त्रिपाठी नाम का वह सुन्दर एवं योग्य नवयुवक प्ण्।ण्ैण् में आ गया । स्व. श्री त्रिपाठी ने आगे चलकर अनेक वर्षों तक भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्रिय एवं विश्वासपात्र ।कअपेवत के रूप में कार्य किया। ऐसे संस्मरणों से श्री शुक्ला जी, जिन्हें हम लोग पापा कहते थे, के प्रति हृदय श्रद्धा एवं सम्मान से भर जाता है।

उनकी सबसे बड़ी पुत्री श्रीमती पद्मा तिवारी के पति श्री जय नारायण तिवारी प्ण्।ण्ैण्, मबतमजंतल पद जीम डपदपेजतल वि भ्वउम ।ििंपते ळवअजण् वि प्दकपंए के पद से सेवानिवृत्त हुये थे। यह दोनों पति पत्नी इतने भाग्यशाली थे कि इनकी बड़ी पुत्री श्रीमती रागिनी मिश्रा के पति श्री कमल कान्त मिश्रा प्ण्।ण्ैण्, कर्नाटक सरकार के मुख्य सचिव के पद से सेवानिवृत्त हुये हैं तथा उनकी छोटी पुत्री श्रीमती गुंजन मिश्रा इस समय चीफ़ इन्कम टैक्स कमिश्नर के पद पर कार्यरत हैं और उनके पति श्री आलोक मिश्रा ठंदा वि प्दकपं के बैंपतउंद – डंदंहपदह क्पतमबजवत के पद से सेवानिवृत्त हुये हैं।

उनकी दूसरी पुत्री श्रीमती प्रभा बाजपेयी, जो स्वयं भी ज्योतिष की अच्छी विद्वान् थीं, के पति स्व. श्री उमाकान्त बाजपेयी त्महपवदंस च्तवअपकमदक थ्नदक ब्वउपेपवदमत के पद पर कार्यरत थे।

मेरी पत्नी श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी उनकी तीसरी पुत्री हैं। जब श्री शुक्ला जी मुझे देखने आये थे, तब मैने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से केवल डण्ैब. प्रथम वर्ष की परीक्षा, प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी किन्तु मेरी जन्मपत्री उन्हें भविष्य का दर्शन करवा रही थी। विवाह के लिये मेरे घर में कोई सहमत नहीं था, मैं तो उसके अत्यन्त विरुद्ध था परन्तु पापा अपने द्वारा संकल्पित कार्य को बिना पूर्ण किये हुये छोड़ने वाले व्यक्ति नहीं थे। वह मेरे घर राजा का रामपुर गये और अपनी सूझबूझ तथा अपनी बात मनवाने की अपनी अद्वितीय क्षमता से मेरी माँ से यह कहलवा लिया कि शादी तो शुक्ला जी की लड़की से ही होगी। बस फिर क्या था उनकी विजय हो गयी क्योंकि मेरी माँ की बात टालने वाला घर में कोई नहीं था। मुझे भी अपनी अम्मा के सामने समर्पण करना पड़ा और मैं जीवन के नये मार्ग पर चल पड़ा।

पापा की चोथी पुत्री श्रीमती प्रकाश मिश्रा के पति डा. बी. डी मिश्रा च्ण्डण्ै 1 से सेवानिवृत्त हुये हैं। वह अनेक वर्षों तक उर्सला हास्पिटल कानपुर के मुख्य चिकित्सा अधिकारी रहे।

पाँचवी पुत्री श्रीमती प्रसन्न दीक्षित के पति श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित न्दपवद ठंदा वि्पदकपं के बैंपतउंद – डंदंहपदह क्पतमबजवत के पद से सेवा निवृत्त हुये हैं।

छठी पुत्री श्रीमती प्रीति त्रिपाठी के पति स्व. श्री विजय शंकर त्रिपाठी का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

सातवीं पुत्री श्रीमती कृष्णा मिश्रा के पति स्व. श्री रंगनाथ मिश्रा जंजम ठंदा वि्पदकपं के त्महपवदंस डंदंहमत के पद पर कार्यरत थे।

आठवीं पुत्री श्रीमती मीरा त्रिपाठी के पति स्व. श्री आशुतोष त्रिपाठी, उत्तर प्रदेश जल निगम के चीफ़ इन्जीनियर के पद से सेवानिवृत्त हुये थे।

नौवीं पुत्री श्रीमती अनुराधा मिश्रा के पति श्री राजाराम मिश्रा ⅠⅠ।ै आसाम सरकार के वरिष्ठ सचिव के पद से सेवानिवृत्त हुये हैं।

श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी ने अपने ऐसे प्रतिभाशाली पिता से जो संस्कार प्राप्त किये हैं, उनके अनुसार आचरण करके उन्होंने अपने जीवन को आदर्श भारतीय महिलाओं के अनुरूप बनाया है। वह अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की दान पुण्य करने वाली पतिव्रता महिला हैं।

उनका जन्म दिनाङ्क 19.8.1933 को वाराणसी में हुआ था। उन्होंने अपनी माँ को किशोरावस्था में ही खो दिया । तत्पश्चात् उन्हें सर्वाधिक प्रेम अपनी बड़ी बहन स्व. श्रीमती

पद्मा तिवारी से प्राप्त हुआ, जिनकी स्मृति वह हर समय अपने हृदय में संजोये रहती हैं।

दिनाङ्क 10.6.1951 को मेरे साथ विवाह होने के पश्चात् उन्हें सदैव आर्थिक अभाव का सामना करना पड़ा क्योंकि जब दिनाङ्क 2.2.1957 को मैने च्छै अधिकारी के रूप में कार्य प्रारम्भ किया तब मेरा वेतन केवल 300ध् रु. मासिक था और मैने सत्य एवं सदाचार के मार्ग पर चलने का दृढ़ निश्चय कर रखा था । उन्होंने एक वरिष्ठ ण्।ै अधिकारी की पुत्री होने का अहंकार छोड़कर एक आदर्श पत्नी एवं बहू का जीवन व्यतीत करते हुये मेरे माता-पिता का हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त किया । भगवान् की कृपा से उन्हें तीन पुत्रों एवं एक पुत्री की माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ किन्तु दुर्भाग्य से हमारे सबसे बड़े एवं सबसे योग्य पुत्र, श्री अनुराग त्रिवेदी, जो कि अमेरिका के नागरिक बन गये थे, का 50 वर्ष की आयु में दिनाङ्क 11.11.2002 को अमेरिका के ज्मगें में स्वर्गवास हो गया।

इस वज्रपात से हम लोग संभल भी नहीं पाये थे कि हमारे सबसे छोटे पुत्र श्री सौरभ त्रिवेदी को भगवान् ने केवल 40 वर्ष की आयु में ही लखनऊ में, दिनाङ्क 18.3.2005 को अपने पास बुला लिया।

इन अत्यन्त हृदय विदारक कठोर आघातों से छिन्न भिन्न हुये जीवन को किसी प्रकार व्यवस्थित करते हुये श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी ने अपने को पूर्ण रूपेण भगवान् की भक्ति में लीन

कर दिया है। 82 वर्ष की आयु में स्वास्थ्य ठीक न रहते हुये भी वह निरन्तर गायत्री मन्त्र का जप करती रहती हैं और शेष समय पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ, जिसकी वह उपाध्यक्ष हैं, के विद्यार्थियों की देख रेख तथा मार्गदर्शन में व्यतीत करती हैं।

किन्तु यह महत्वपूर्ण है कि उनके जीवन में किसी प्रकार की निराशा नहीं है और उनकी जिजीविषा तथा जीवन के प्रति उनके उत्साह में किसी प्रकार की कमी नहीं है। वह अपनी भावी पीढ़ी, जिसमें उनका मेधावी तथा प्रतिभाशली पौत्र आदित्य प्रियम त्रिवेदी तथा उनकी पुत्री श्रीमती सुरभि, जो कि पापा द्वारा स्थापित डण्ज्ञपैण्क प्दजमत ब्वससमहम में प्रवक्ता हैं, की पुत्री पूजा, जो कि लखनऊ विश्वविद्यालय के डठ। विभाग में प्रवक्ता के पद पर कार्यरत है, की मंगल कामना करते हुये उन दोनों के उज्ज्वल भविष्य के लिये आशा एवं विश्वास से परिपूर्ण हैं। अध्ययन तथा लेखन के प्रति भी उनकी रुचि यथावत है । कहानी लेखन से उन्हें विशेष प्रेम है।

सभी बच्चों को ज्ञान के साथ श्रेष्ठ संस्कार एवं मार्गदर्शन प्रदान करने के उद्देश्य से इस पुस्तक में 74 महत्वपूर्ण वेद मन्त्रों तथा 406 श्लोकों का समावेश किया गया है।

मुझे पूर्ण आशा एवं विश्वास है कि सभी माता-पिता वैदिक तथा लौकिक ज्ञान के इस कोष से न केवल स्वयं

लाभान्वित होंगे प्रत्युत् अपने बच्चों को भी, उनके प्रति प्रेम से प्रस्तुत किये गये इस प्रेमामृत का पान करायेंगे।

यहाँ, यह उल्लेखनीय है कि इस पुस्तक की कम्प्यूटर टाइपिंग तथा कम्पोज़िंग आदि का समस्त कार्य मेरे प्रिय शिष्य श्री रोहित मिश्रा ने, शास्त्री के अपने अन्तिम वर्ष के अध्ययन के साथ साथ अत्यन्त परिश्रम तथा मनोयोग से सम्पन्न किया है, जिसके लिये उन्हें कोटिशः आशीर्वाद।

भगवान् से प्रार्थना है कि उनका जीवन सुखी, सफल एवं समृद्ध हो।

दिनांक 19.08.2015 विधुशेखर त्रिवेदी [illegible]. (अ.
प्रा[illegible]

प्रार्थना एवं स्तुति

यो भूतं च भव्यं च सर्वं
यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्१यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे
नमः।।

अथर्व वेद १०।८।१

(यः भूतं च भव्यं च) जो भूत भविष्य तथा वर्तमान (यः सर्वं अधितिष्ठति) सब का अधिष्ठाता है, सबका स्वामी है, (यस्य च केवलं स्व☺ और जिसका केवल प्रकाशमय तथा आनन्दमय स्वरूप ही है अर्थात् जो केवल प्रकाश स्वरूप तथा सुखस्वरूप है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम☺ उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

यस्य भूमिः
प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे
नमः।।

अथर्व॰ १०। ७। ३२

(यस्य भूमिः प्रमा) पृथिवी जिसकी पदस्थानीय है, (अन्तरिक्षं उत उदरम्) तथा अन्तरिक्ष जिसके उदर के समान है, (यः दिवं मूर्धानं चक्रे) जिसने द्युलोक को अपने मूर्धा

अर्थात् शिर के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है ।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च
पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं१तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे
नमः।।

अथर्व॰१०। ७। ३३

(सूर्यः पुनर्णवः चन्द्रमाः च) सूर्य तथा पुनः पुनः नवीन होने वाला चन्द्रमा (यस्य चक्षुः) जिसके नेत्र हैं (यः अग्निं आस्यं चक्रे) तथा जिसने अग्नि को अपने मुख के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है ।

यस्य वातः प्राणापानौ
चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे
नमः।।

अथर्व॰ १०। ७। ३४

(यस्य वातः प्राणापानौ) वायु जिसका प्राण और अपान है (अङ्गिरसः चक्षुः अभवन्) प्रकाश देने वाली किरणें जिसके चक्षु के समान हैं, (यः दिशः प्रज्ञानीः चक्रे) तथा

जिसने दिशाओं को अपने कानों के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम☺ उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है ।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।।

यजु॰,१६।४१

(नमःशम्भवाय च मयोभवाय च) सांसारिक सुख उत्पन्न करने वाले सुखस्वरूप तथा मोक्ष सुख के प्रदाता परमानन्द स्वरूप परमात्मा को नमस्कार हैय (नमः शङ्कराय च मयस्कराय च) हर्ष, उल्लास एवं लौकिक सुख के प्रदाता तथा मोक्ष के परम आनन्द के प्रदाता परब्रह्म को नमस्कार है य (नमः शिवाय च शिवतराय च) मङ्गलमय, कल्याणकारी तथा परम कल्याणकारी देवाधि देव महादेव को नमस्कार है ।

शं सुखं भावयति इति शंभवः । अथवा,

शं सुखं भवत्यस्मादिति शंभवः ।।

भगवान् सुख देते हैं अथवा भगवान् से सुख प्राप्त होता है इसलिये भगवान् शंभव हैं ।

शं सुखं करोति इति शङ्करः ।

मयो मोक्ष सुखं करोति इति मयस्करः ।।

भगवान् सुखी करते हैं इसलिये शंकर हैं । भगवान् मोक्ष सुख देते हैं इसलिये मयस्कर हैं ।

शिवः कल्याण रूपो शान्तो निर्विकारः ।

शिव कल्याण रूप हैं,कल्याण करने वाले हैं, शान्त हैं, निर्विकार हैं।

गायत्री मन्त्र

(ओ३म्) भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

ऋग्. ३। ६२। १०ए यजुण ३६।३ए ३।३५ए२२।९ तथा ३०।२

साम. उत्तरा. १३।४। १ क्र. सं. १४६२

(ओ३म्) हे अन्तर्यामी ! हमारे हृदयए मनए प्राण तथा आत्मा में वसने वालेए सर्वव्यापकए सर्वेश्वरए सर्वशक्तिमान परमपिता परमात्मा ! (भूः=सत्) हे सर्वाधार ! (भुवः=चित्) हे ज्ञान स्वरूपए सर्वज्ञ ! हमारे समस्त दुःखों को दूर करने वाले (स्वः=आनन्द) हे सुख स्वरूप! परम आनन्द को देने वालेए ;भूर्भुवः स्व☺ हे सच्चिदानन्द! (तत् सवितुः देवस्य) सकल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वालेए उसका पालन पोषण करने वाले तथा उसे प्रेरणा देने वाले उस सविता देव केए परब्रह्म के (वरेण्यं भर्ग☺ वरण करने योग्यए श्रेष्ठए कल्याणकारी पापनाशक तेज का हम (धीमहि) ध्यान करते हैंए उपासना करते हैं तथा उसके ज्योतिर्मय स्वरूप को अपने अन्तःकरण में धारण करते हैं । (धियो यो न☺ जो परब्रह्म हमारी बुद्धिए वाणी तथा कर्मों को (प्रचोदयात्) कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित

करे। अथवाए हे प्रभो! हमारी बुद्धिए वाणी तथा कर्मों को कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित कीजिये ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।

यजु. ३। ६० (पाठभेद) ऋग्. ७। ५९। १२

(सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्) जीवन की सुगन्धि अर्थात् मनुष्य द्वारा किये गये पुण्य कर्मों की सुगन्धिए उसकी यश सुरभि एवं आत्मा तथा शरीर की पुष्टि एवं धन धान्य आदि का संवर्धन करने वाले (त्र्यम्बकं) रुद्र

अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले एवं सज्जनों का कल्याण करने वाले भगवान् शिव की हम (यजामहे) उपासना करते हैं तथा यह प्रार्थना करते हैं कि वह हमें (मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय) मृत्यु के बन्धन से उसी प्रकार मुक्त कर दें (उर्वारुकं इव) जिस प्रकार पका हुआ खरबूजा अपनी लता से मुक्त हो जाता है (मा अमृतात्) किन्तु हमें अमृत सेए मोक्ष से मुक्त न करें अर्थात् हमें अमृतत्व प्रदान करेंए मोक्ष प्रदान करें ।

भगवान् को त्र्यम्बक अर्थात् तीन नेत्रों वाला इसलिये कहा जाता है कि वह भूतए भविष्य वर्तमान तथा पृथिवीए अन्तरिक्ष एवं द्युलोक तीनों को भली प्रकार देखते हैं और इस त्रिगुणात्मिका सृष्टि की रचना कर उसके प्रादुर्भावए स्थिति एवं

प्रलय तीनों को पूर्ण रूपेण नियन्त्रित करते हैं। अथवाए त्र्यम्बकः त्रिनयनः त्रीणि चन्द्र सूर्याग्निरूपाणि नयनानि यस्य) चन्द्रए सूर्य तथा अग्नि रूपी तीन तेज हैंए नेत्रों के समान जिसके, ऐसे भगवान् त्र्यम्बक हैं ।

यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद्गन्धो वात्येवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद्गन्धो वाति (तै.आ.१०। ९) जिस प्रकार सुगन्धित फूलों से भरे हुये वृक्ष की सुगन्धि दूर से ही आती है उसी प्रकार पुण्य कर्मों की सुगन्धि भी दूर से ही आती है ।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य
देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ।।

साम. पूर्वार्चिक, क्र. सं. ६०५ , ऋग्०१। १। १

(पुरोहितम्) यज्ञ आदि प्रत्येक श्रेष्ठ कार्य में जिन्हें आगे रखा जाता है अथवा सृष्टि से पूर्व अव्यक्त कारण प्रकृति को धारण करने वाले (यज्ञस्य देवम्) यज्ञ के द्वारा जिनका अर्चन एवं पूजन किया जाता है, ऐसे यज्ञ को उत्पन्न एवं प्रकाशित करने वाले, स्वयं प्रकाशमान् तथा समस्त ब्रह्माण्ड को आलोकित करने वाले (ऋत्विजम्) ऋतु ऋतु में अर्थात् सदैव पूजनीय तथा उपासना किये जाने योग्य अथवा, उत्पत्ति के समय स्थूल सृष्टि को रचने वाले (होतारम्) समस्त पदार्थों एवं सुखों को देने वाले

तथा समस्त प्रार्थनाओं को सुनने वाले (रत्न धातमम्) समस्त प्रकार के रत्नों तथा सूर्य, चन्द्र आदि रमणीय पदार्थों को धारण

करने वाले (अग्निम् ईळे) प्रकाश स्वरूप परब्रह्म की हम स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करते हैं ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो
हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ।।

साम.पूर्वा. १। १, उत्तरा. २।१, क्र. सं. १ तथा ६६०,

ऋग्. ६। १६। १०

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म ! (गृणान☺ हमारे द्वारा स्तुत किये हुये, (होता) हमें सब कुछ देने वाले दाता, आप (वीतये) हमें प्रकाश, ज्ञान एवं समृद्धि देने के लिये तथा (हव्य दातये) अन्न आदि समस्त सुखकारी पदार्थ उपलब्ध कराने के लिये (आयाहि) आइये और (बर्हिषि नि सत्सि) हमारे द्वारा बिछाये गये कुश के आसन पर तथा हमारे हृदयाकाश में विराजिये ।

सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्
।
स भूमिं सर्वतस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।

अथर्व. १९। ६। १ (पाठभेद) यजु.३१।१
ऋग्.१०। ९०। १, साम.पूर्वा. ६। ४। ३ क्र.सं.६१७, (पाठभेद)

वह परम पुरुष हज़ारों शिर,हज़ारों नेत्रों तथा हज़ारों पैरों वाला है। वह इस भूमि को, ब्रह्माण्ड को (सर्वत: स्पृत्वा) सब ओर से घेरकर, आच्छादित करके दश अङ्गुल के आकार वाले

अथवा नाभि से दश अङ्गुल ऊपर स्थित हृदय में, अथवा दशाङ्गुलम् अर्थात् ब्रह्माण्ड के अन्दर तथा उसके बाहर भी स्थित है ।

ब्रह्माण्ड को दशाङ्गुलम् इसलिये कहते हैं कि यह पञ्च महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथिवी तथा इनकी तन्मात्रायें, क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से बनता है ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं.
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेतिए
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।

यजुर्वेद. ३१ । १८

(अहम् एतम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् महान्तं पुरुषं वेद) मैं उस आदित्य वर्ण वाले अर्थात् अज्ञान एवं अन्धकार से परे प्रकाश स्वरूप, महान पुरुष को जानता हूँ । (तम् एव विदित्वा मृत्युं अति एति) उसी को जानकर ज्ञानी भक्त मृत्यु को पार करता है, (अयनाय अन्यः पन्था न विद्यते) मोक्ष के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै.

द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ।।

यजुर्वेद. १७। १९, ऋग्. १०। ८१।३

(विश्वतः चक्षुः उत विश्वतः मुख☺ सब ओर नेत्रों वाला, सब ओर मुख वाला, (विश्वतः बाहुः उत विश्वतः पात्) सब ओर बाहों तथा सब ओर पैरों वाला अर्थात् सब का दृष्टा, श्रोता, ज्ञाता एवं सर्व शक्तिमान् सर्वगतः, सर्वव्यापक, (देव एक☺ वह एक मात्र देव अर्थात् परमात्मा (द्यावा भूमी) द्युलोक तथा पृथिवी आदि लोकों को (पतत्रैः जनयन्) गतिशील परमाणुओं आदि से, उत्पन्न करता हुआ (बाहुभ्याम् सं धमति) अपने अनन्त बाहुबल से, अपने पराक्रम से संसार को सम्यक् रूप से प्राप्त होता है अर्थात् संसार में व्याप्त होकर तथा उसे आधार देकर स्थित रहता है ।

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान्न बिभाय
मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ।।

अथर्ववेद. १०। ८। ४४

वह परब्रह्म कामना रहित, धैर्यवान, प्रज्ञावान, अमर, स्वयम्भू, रस अर्थात् आनन्द से ओत प्रोत तथा किसी भी प्रकार की न्यूनता से रहित अर्थात् सब प्रकार से पूर्ण है । उस

धीर, अजर तथा सदैव तरुण रहने वाले परमात्मा को जानकर ही मृत्यु का भय दूर होता है ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मा.
न्विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।

यजुर्वेद. ४०।१६, ५। ३६ तथा ७। ४३, ऋग्. १।१८९।१

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (अस्मान् राये सुपथा नय) हमें धन, ऐश्वर्य तथा सर्वतोमुखी अभ्युदय के लिये सुपथ अर्थात् अच्छे मार्ग से ले चलिये । हे देव ! आप हमारे (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) समस्त कर्मों, विचारों तथा मन के भावों को जानने वाले हैं (अस्मत् जुहुराणम् एनः युयोधि) हम से कुटिलता पूर्ण पापों को अलग कर दीजिये (ते भूयिष्ठां नम उक्तिं विधेम) हम आपको बारम्बार प्रणाम करते हुये आपकी श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक स्तुति तथा उपासना करते हैं ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ।। यजुर्वेद. ३०।३

(सवितः देव) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले तथा उसका पालन पोषण करने वाले, उसे चेतना एवं प्रेरणा देने वाले सविता देव, हे परब्रह्म ! (विश्वानि दुरितानि परा

सुव) समस्त दुःखों तथा हमारे समस्त अवगुणों को हमसे दूर कर दीजिये । (यद् भद्रं तत् नः आसुव) और जो हमारे लिये कल्याणकारी हो, उसे हमारे पास लाइये, हमें प्राप्त कराइये । हमारा कल्याण किसमें है, यह भगवान् ही जानता है ।

इससे सुन्दर और कोई प्रार्थना क्या हो सकती है ६ यह समर्पण तथा भक्ति की चरम सीमाहै।

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका
सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः ।।

अथर्व. ७। ७१। १

(सरस्वति) हे सरस्वति ! (नः शिवा शंतमा सुमृडीका भव) हमारे लिये मंगलकारी, अत्यन्त कल्याणकारी तथा उत्तम सुख देने वाली होइये। (ते संदृशः मा युयोम) आपकी कृपा दृष्टि एवं सम्यक् दर्शन से हम कभी वञ्चित न हों ।

पावका नः सरस्वती
वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ।।

साम. पूर्वा. २। १०। ५ क्र. सं. १८९, यजु. २०। ८४, ऋग्. १। ३। १०

(पावका नः सरस्वती) सरस्वती हमें पवित्र करने वाली तथा (वाजेभिः अन्नै☺ अन्न आदि पदार्थों से युक्त होने के कारण (वाजिनीवती अन्नवती) अन्नपूर्णा हैं । (धियावसुः कर्मवसु☺ बुद्धि तथा ज्ञान पूर्वक किये गये श्रेष्ठ कर्मों से धन

देने वाली सरस्वती अथवा, (धियावसु☺ बुद्धि ही जिनका धन है, ऐसी सरस्वती (यज्ञं वष्टु यज्ञं वहतु) हमारे यज्ञ का वहन करें, उसे सुशोभित करें, सफल करें। (वश कान्तौ)

प्रेमामृत

९

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।

अप्रशस्ताइव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।।

ऋग्. २।४१।१६

(नदीतमे) ज्ञान की श्रेष्ठतम सरिता स्वरूप अथवा श्रेष्ठतम सरिता के समान पवित्र एवं सुखी करने वाली, (अम्बितमे) हे श्रेष्ठ माँ तथा (देवितमे) हे सर्वश्रेष्ठ देवि सरस्वति ! (अप्रशस्ता इव स्मसि) हम अप्रशस्त अर्थात् अयोग्य अथवा अप्रशंसनीय के समान हैं, (अम्ब) हे माँ ! (नः प्रशस्तिम् कृधि) हमें ज्ञान एवं समृद्धि देकर प्रशंसनीय बनाइये।

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः ।

स नः पूर्णेन यच्छतु ।।

अथर्ववेद. ७। १८। १

(धाता जगतः पतिः ईशान☺ सबका धारण एवं पालन पोषण करने वाले, समस्त संसार का स्वामी एवं रक्षक तथा

सभी पर शासन एवं नियन्त्रण करने वाले प्रभु (नः रयिं दधातु) हमें धन एवं ऐश्वर्य दें । (स नः पूर्णेन यच्छतु) वह हमें पूर्णरूपेण दें अर्थात् हमारा सम्पूर्ण अभ्युदय करें, हमें सब प्रकार का सुख, समृद्धि एवं वैभव दें तथा हमारा सब प्रकार से कल्याण करें ।

'रयिं' के साथ 'पूर्णेन यच्छतु' शब्दों का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कितनी सुन्दर है यह प्रार्थना ।

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या
महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैरा
प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ।।

यजुर्वेद (पाठभेद) ५। १९, अथर्ववेद. ७। २७। ८

१० प्रेमामृत

(विष्ण) हे विष्णु ! (दिवः उत पृथिव्या☺ द्युलोक तथा पृथिवी से और (महः उरोः अन्तरिक्षात्) महान विस्तृत अन्तरिक्ष से (बहुभिः वसव्यैः हस्तौ प्रणस्व) बहुत से अर्थात् अनेक प्रकार के तथा बहुत बड़ी मात्रा में धनों को अपने दोनों हाथों मे भर लीजिये (दक्षिणात् उत सव्यात्) और अपने दायें तथा बायें, दोनों हाथों से (आप्रयच्छ) हमें प्रदान कीजिये।

कैसी श्रेष्ठ प्रार्थना है यह !

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि

चित्तिं दक्षस्य
सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां
स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ।।

ऋग्. २। २१। ६

(इन्द्र) हे इन्द्र !, हे प्रभो ! (अस्मे श्रेष्ठानि द्रविणानि) हमें श्रेष्ठ धन, (दक्षस्य चित्तिं) कर्म करने का सामर्थ्य एवं उत्साह तथा सत्कर्म का ज्ञान और (सुभगत्वं) सौभाग्य (धेहि) दीजिये (रयीणां पोषं तनूनां अरिष्टिं) धन एवं ऐश्वर्य का पोषण तथा शरीरों की निरोगिता दीजिये (वाचः स्वाद्मानं अह्नाम् सुदिनत्वं) एवं वाणी की मधुरता तथा दिनों की उत्तमता दीजिये अर्थात् हमारे जीवन के प्रत्येक दिन को उत्तम बनाइये ।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ।।

यजु. १९। ९

हे प्रभो ! (तेजः असि तेजः मयि धेहि) आप तेजस्वी हैं, मुझ में तेज को धारण कीजिये, (वीर्यं असि वीर्यं मयि धेहि) आप पराक्रम से युक्त हैं,

मुझ में पराक्रम धारण कीजिये अथवा मुझे पराक्रम दीजिये, (बलं असि बलं मयि धेहि) आप बल से युक्त हैं, मुझे बल दीजिये, आप ओजस्वी हैं, मुझ में ओज अर्थात् कान्ति को धारण कीजिये, (मन्युः असि मन्युं मयि धेहि) आप दुष्टों पर क्रोध करने वाले हैं, मुझ में उस क्रोध को धारण कीजिये, अर्थात् मुझे भी शत्रु पर क्रोध करने की क्षमता दीजिये, (सहः असि सहः मयि धेहि) आप शक्ति से युक्त हैं, शत्रु का पराभव करने वाले हैं, शत्रु का पराभव करने की वह शक्ति मुझे दीजिये । ओजः कान्तिः । सहो बलम् । मन्युः क्रोधः ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत¦ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

यजुर्वेद. ३६।२४

(देवहितं) परब्रह्म द्वारा स्थापित,देवों का हित करने वाला (तत्) वह (शुक्रं) पवित्र, पाप रहित, प्रकाशमान (चक्षुः) आदित्य रूपी जगत का चक्षु (पुरस्तात् उच्चरत्) सृष्टि के आदि काल से ही ऊपर उदित हुआ है । अथवा, (तत् चक्षु☺ वह परब्रह्म समस्त संसार का चक्षु है, सबका मार्ग दर्शक है, सबको ज्ञान एवं प्रकाश देने वाला है, (देवहितम्) वह विद्वानों का हित करने वाला है (शुक्रम्) शुद्ध स्वरूप है

(पुरस्तात् उत् चरत) तथा अनादि काल से सबके ऊपर अपने दिव्य स्वरूप में स्थित है । (त्रिपाद् ऊर्ध्व उदैत् पुरुषः – यजुर्वेद)।

परमात्मा की कृपा से हम (पश्येम शरदः शतं) सौ वर्षों तक देखें, (जीवेम शरदः शतं) सौ वर्षों तक जीवित रहें, (शृणुयाम शरदः शतं) सौ वर्षों तक सुनें, (प्र ब्रवाम शरदः शतं) सौ वर्षों तक ठीक प्रकार बोल सकें, (अदीनाः स्याम शरदः शतं) सौ वर्षों तक दीनता को प्राप्त हुये बिना, स्वाभिमान एवं सम्मान पूर्वक रहें, (भूयः च शरदः शतात्) तथा सौ वर्षों

से भी अधिक समय तक हृष्ट पुष्ट होकर सुखी जीवन व्यतीत करें ।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ।।

ऋग्. १।१।९, यजुर्वेद. ३।२४

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (पितेव सूनवे) जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के लिये सुगमता से प्राप्त होने योग्य होता है, उसी प्रकार (स न☺ वह आप हमें (सूपायनो) (सुउपायन☺ सुखेन उपैतुं शक्यः सुख से प्राप्त होने योग्य (भव) होइये तथा (सचस्वा नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हमें श्रेष्ठ कर्मों से सम्बद्ध कीजिये ।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं
धियञ्जिन्वमवसे हूमहे
वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।।

ऋग्. १। ८९। ५, यजुर्वेद. २५। १८

(वयम्) हम (जगतः तस्थुषः पतिम्) चराचर जगत का पालन पोषण तथा रक्षा करने वाले, (धियं जिन्वम्) बुद्धि को पवित्र करने वाले, उसे प्रसन्न एवं तृप्त करने वाले (तम् ईशानम्) सब पर शासन करने वाले उस ईश्वर का (अवसे हूमहे) अपनी रक्षा के लिये आह्वान करते हैं, (यथा पूषा) जिससे कि सब का पोषण करने वाला परमात्मा (नः वेदसाम् वृधे) हमारे ज्ञान, धन एवं ऐश्वर्य की वृद्धि तथा (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (अदब्धः रक्षिता पायुः असत्) आलस्य रहित एवं अपराजित होकर हमारी रक्षा करने वाला तथा हमारा पालन करने वाला हो ।

१३

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा:
स्वस्ति न: पूषा विश्ववेदा: ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि:
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

ऋग्. १। ८९। ६, साम. उत्त. २१। ९। ३ क्र. सं. १८७५, यजु. २५। १९

(वृद्धश्रवा☺ महान यश तथा प्रचुर अन्न एवं धन वाले (इन्द्र☺ परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (न: स्वस्ति) हमारे लिये कल्याणकारी हों, (स्वस्ति न: पूषा विश्ववेदा☺ सर्वज्ञ तथा सबका पालन पोषण करने वाले परमात्मा हमारा कल्याण करें, (अरिष्टनेमि☺ कभी नष्ट न होने वाले दृढ़ वज्र को धारण करने वाले तथा (तार्क्ष्य☺ भक्तों के प्रयोजनों को शीघ्र पूर्ण करने वाले प्रभु (न: स्वस्ति) हमारा कल्याण करें, (स्वस्ति न: बृहस्पति: दधातु) सूर्य चन्द्र आदि महान देवों एवं महान शक्तियों के स्वामी परब्रह्म हमारे लिये सुख एवं कल्याण को धारण करें ।

श्रव: श्रवणीयं यश: अर्थात् श्रवण करने योग्य यश । **वृद्धश्रवा: वृद्धं प्रभूतं श्रव: श्रवणीयं यश: अन्नं धनं कीर्तिं वा यस्य स:** । महान अन्न धन तथा यश है जिनका, वह परमात्मा वृद्धश्रवा: हैं । (तार्क्ष्य☺–**तूर्णं अर्थं रक्षति इति**

ताक्ष्र्य:, निरुक्त १०। ३। १७ हमारी पार्थना एवं प्रयोजन को शीघ्र पूरा करने वाले परमात्मा ताक्ष्र्य हैं ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभि.
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।

ऋग्.१।८९।८, (पाठभेद), साम. उत्त. २१। ९। २ क्र. सं. १८७४, यजु.२५।२१

(यजत्राः देवा☺ हे यजनीय देवो ! (भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम) हम अपने कानों से कल्याणकारी तथा प्रिय वचनों को सुनें, (भद्रं पश्येम अक्षभि☺ हम अपनी आँखों से कल्याणकारी तथा मनोहारी दृश्यों को देखें तथा (स्थिरैः अङ्गै☺ हृष्ट पुष्ट अङ्गों से युक्त (तनूभि☺ शरीरों से हम (तुष्टुवांस☺ परमात्मा की स्तुति करते हुये (देवहितं) देवों एवं विद्वानों के लिये हितकारी (यदायु☺ जो हमारी आयु है, (वि अशेमहि) उसे भली प्रकार प्राप्त करें अर्थात् हम अपने जीवन पर्यन्त देवों एवं विद्वानों का हित रक्षण करते रहें ।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो
वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु । शं नो भवतु
भुवनस्य यस्पतिः ।।

यजुर्वेद. ३६। २

(मे) मेरे (चक्षुष☺ नेत्र की तथा (हृदयस्य) हृदय एवं अन्तःकरण तथा बुद्धि की (यत्) जो (छिद्रम्) न्यूनता अथवा दोष है (वा) तथा मेरे (मन स☺ मन की (अतितृण्णम्) जो व्याकुलता एवं दोष है, (मे तत्) मेरे उस दोष को, न्यूनता को (बृहस्पति☺ सूर्य आदि महान देवों के स्वामी परमात्मा (दधातु) पूर्ण करें, ठीक करें। (भुवनस्य यः पति☺ समस्त संसार का जो स्वामी एवं रक्षक है (शं नः भवतु) वह परमेश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो ।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु
शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु
शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ।।

अथर्व. (पाठभेद) १९। १०। ८, ऋग्.७। ३५। ८

(शं नः सूर्यः उरुचक्षा उदेतु) विस्तृत तेज एवं प्रकाश वाला सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर उदित हो, (शं नः चतस्रः प्रदिशो भवन्तु) चारों दिशायें एवं प्रदिशायें हमारे लिये सुखकारी हों । (शं नः पर्वताः ध्रुवयः भवन्तु) अचल पर्वत हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों, (शं नः सिन्धव☺ नदियाँ एवं समुद्र हमारे लिये सुखकारी हों, (शं उ नः सन्तु आप☺ तथा जल हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों ।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥

अथर्व. (पाठभेद) १९। ९। ६, ऋग्.१। ९०।९,
यजु. ३६। ९

(मित्रः नः शं) सब का प्रिय मित्र, जगदीश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो (शं वरुण☺ सर्व साक्षी तथा सर्वश्रेष्ठ परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो । (शं नः भवतु अर्यमा) न्यायकारी ईश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो । (बृहस्पति☺ वेदवाणी एवं महान ब्रह्माण्ड का रक्षक (इन्द्र☺ परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः शम्) हमारे लिये कल्याणकारी हो (उरुक्रमः विष्णुः नः शम्) महान पराक्रम अथवा विस्तृत पद वाला सर्वव्यापक परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो । व्याप्नोतीति विष्णुः । सर्वव्यापक होने से भगवान् का नाम विष्णु है ।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥

ऋग्. १०।९।४ए यजु. ३६।१२

अथर्व. १।६।१ए साम. पूर्वा. १।३। १३,
क्र.सं. ३३

(देवी आपः) दिव्य गुणों से युक्त जल (पीतये नः अभिष्टये) पीने के लिये तथा हमारे अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिये (शं भवन्तु) सुखकारी हों, शान्तिदायक हों (शं योः अभिस्रवन्तु नः) तथा रोग एवं भय आदि का शमन करके हमारे ऊपर चारों ओर से सुख की वर्षा करें।

शं नो वातः पवता। शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ।।

यजुर्वेद. ३६। १०

(शं नः वातः पवताम्) वायु हमारे लिये सुखकारी होकर बहे, (शं नः तपतु सूर्य☺) सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर तपे (शं नः कनिक्रदत् देव☺) कड़कड़ाने वाला विद्युत् देव हमारे लिये सुखकारी हो (पर्जन्यः अभि वर्षतु) तथा मेघ हमारे ऊपर चारों ओर से सुखकारी वर्षा करें ।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां

कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

यजुर्वेद.१३। ४, २३। १ तथा २५। १०, अथर्ववेद. ४। २। ७,

ऋग्.१०। १२१।१

(हिरण्यगर्भः अग्रे समवर्त्तत) सूर्य चन्द्र आदि प्रकाशमान पदार्थों को गर्भ के समान अपने अन्दर धारण करने वाला प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ही सृष्टि के पूर्व में था तथा (भूतस्य एकः जातः पतिः आसीत्) समस्त प्राणियों एवं पदार्थों का एकमात्र प्रसिद्ध स्वामी एवं रक्षक था । (सः इमाम् पृथिवीं उत द्यां दाधार) उस ईश्वर ने इस पृथिवी तथा द्युलोक आदि को धारण किया है । (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से भक्ति पूर्वक उपासना करें ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य
देवाः ।

यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

अथर्व. (पाठभेद) ४। २। १, ऋग्. १०। १२१। २, यजुर्वेद. २५। १३

जो हमें आत्मिक ज्ञान एवं आत्मिक तथा शारीरिक बल देने वाला है, समस्त विश्व जिसकी उपासना करता है, सभी देव तथा विद्वान् जिसकी आज्ञा का, जिसके अनुशासन का पालन करते हैं, जिसकी छाया, जिसका आश्रय अथवा जिसकी कृपा ही अमृत है और जिसकी अकृपा ही मृत्यु है, ऐसे सुखस्वरूप परब्रह्म की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक अनन्यभाव से अर्चना एवं उपासना करें।

य: प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद: कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

अथर्व. ४। २। २, (पाठभेद), ऋग्. १०। १२१। ३, यजुर्वेद. २३। ३, २५।११

(य☺ जो (प्राणत: निमिषत: जगत☺ प्राणधारी तथा पलक झपकाने वाले समस्त प्राणियों का (महित्वा) अपनी महिमा से (एक: इत् राजा बभूव) एक अकेला ही स्वामी है और (य☺ जो (अस्य द्विपद: चतुष्पद: ईशे) इस संसार के द्विपद (दो पैरों वाले) तथा चतुष्पद (चार पैरों वाले) अर्थात् समस्त प्राणियों पर शासन करता है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक उपासना करें ।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य

समुद्र॑ र॒सया॑

स॒हाहु॒ः ।

यस्ये॒माः प्र॒दिशो॒ यस्य॑ बा॒हू

कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥

अथर्व. ४। २। ५, (पाठभेद), ऋग्. १०। १२१। ४, यजुर्वेद. २५। १२

(यस्य महित्वा इमे हिमवन्त☺ जिसकी महिमा से ये हिम मण्डित पर्वत स्थित हैं, (यस्य रसया सह समुद्रं आहु☺ नदियों के साथ समुद्र जिसकी महिमा का गान करते हैं (इमाः प्रदिशाः यस्य बाहू) तथा ये दिशायें एवं उप दिशायें जिसकी बाहों की भाँति फैली हुई हैं (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक उपासना करें ।

मा मा॑ हि॑सीज्जनि॒ता यः पृ॑थि॒व्या

यो वा॒ दिव॑ स॒त्यध॑र्मा॒ व्यान॑ट् ।

यश्चा॒पश्च॒न्द्राः प्र॑थ॒मो ज॒जान॒

कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥

ऋग्. १०। १२१। ९, (पाठभेद), यजुर्वेद. १२। १०२

(मा मा हिंसीत् जनिता यः पृथिव्या) जो पृथिवी को उत्पन्न करने वाला है, वह प्रजापति मुझे किसी प्रकार से

दण्डित न करे, मुझे किसी प्रकार की वेदना, कष्ट अथवा दुःख न दे (यः वा सत्यधर्मा दिवं व्यानट्) तथा सत्य का धारण करने वाला जो परमात्मा द्युलोक का सृजन करके उसमें व्याप्त रहता है, (च यः प्रथमः आपश्चन्द्राः जजान) तथा जिस सर्वश्रेष्ठ एवं सर्व प्रथम प्रकट होने वाले परमात्मा ने मनुष्यों को अथवा सुख देने वाले जल को उत्पन्न किया है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरूप परब्रह्म की हम श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक अपने अन्तःकरण से उपासना करें ।

(मनुष्या वा आपश्चन्द्रा☺ शतपथ ब्राह्मण ७। ३। १। २० मनुष्य आपश्चन्द्र हैं क्योंकि (मनुष्या एव हि यज्ञेनाप्नुवन्ति चन्द्रलोकं पितृमार्गा–

नुसारिण☺ मनुष्य ही पितृमार्ग का अनुसरण करते हुये यज्ञ के द्वारा चन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं । अथवा, (यः च आपः चन्द्राः प्रथमः जजान) यश्च चन्द्राः आह्लादिका जगत्कारणभूता आपो जलानि प्रथमः आदिभूतः सन् जजानोत्पादितवान् तद्वारा मनुष्यानुत्पादितवानित्यर्थः। सर्व प्रथम प्रकट होने वाले जिस परमात्मा ने सुख देने वाले उस जल को उत्पन्न किया, जिससे जगत् की उत्पत्ति होती है और फिर जल से मनुष्यों को उत्पन्न किया ।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा

येन स्वस्तभितं येन नाकः ।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

ऋग्. १०। १२१। ५, यजुर्वेद. ३२। ६

(येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा) जिसने द्युलोक तथा तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि देवों एवं दृढ पृथिवी को धारण कर रखा है, (येन स्वः स्तभितं येन नाक☺ जिसने सुख तथा विशेष सुखपूर्ण स्थान अर्थात् स्वर्ग तथा मोक्ष को धारण कर रखा है, (यः अन्तरिक्षे रजसः विमान☺ जो अन्तरिक्ष में विशेष मान अर्थात् गति से युक्त, समस्त लोक लोकान्तरों को धारण करता है तथा उन्हें गति देता है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परब्रह्म की हम अपने अन्तःकरण से श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक उपासना एवं स्तुति करें ।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं
स्याम पतयो रयीणाम् ।।

यजु. २३।६५, (पाठभेद)
अथर्व. ७।८॰ (८५)।३, (पाठभेद) ऋग्.१॰।१२१।१॰

(प्रजापते) समस्त प्राणियों की रक्षा करने वाले तथा उनके स्वामी हे परमात्मा ! (ता एतानि विश्वा जातानि) उन, इन समस्त उत्पन्न हुये प्राणियों एवं पदार्थों का (त्वत् अन्यः न परि बभूव) आपके अतिरिक्त अन्य कोई स्वामी नहीं है अर्थात् केवल आप ही इस विश्व को नियन्त्रण में रखने में समर्थ हैं, सर्वोपरि हैं । (यत् कामाः ते जुहुम◌) जिन जिन कामनाओं के साथ हम आपकी शरण में आयें, आपकी उपासना करें (तत् नः अस्तु) हमारी वे समस्त कामनायें पूर्ण हों, हमारे मनोवाञ्छित फल एवं उद्देश्य हमें प्राप्त हों, (वयं स्याम पतयो रयीणाम्) तथा हम लोग समस्त प्रकार के धनों एवं ऐश्वर्यों के स्वामी हों ।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशा.
नास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।।

यजु. ३२।१॰

(यत्र देवा◌) जिस परमेश्वर में सभी विद्वान् लोग (अमृतम् आनशान◌मोक्ष अथवा अमृतत्व का उपभोग करते

हुये (तृतीये धामन् अधि ऐरयन्त) तृतीय धाम अर्थात् परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ परम धाम में स्वच्छन्द विचरण करते हैं, (सः नः बन्धु☺ वही हमारा बन्धु है, (जनिता) वही हमें जन्म देने वाला हमारा पिता है, (सः विधाता) वही हमें धारण करने वाला, हमारा पालन पोषण करने वाला तथा हमारे कर्मों के फलों का विधान करने वाला है और (धामानि वेद भुवनानि विश्वा) वही समस्त

लोक लोकान्तरों तथा स्थानों आदि को जानने वाला है ।

देव का अर्थ देवता के साथ साथ विद्वान् भी होता है ।

विद्वांसो हि देवाः (शतपथ ब्राह्मण)

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।।

साम उत्त. ८।६ (२) २ क्रम सं. ११७० (पाठभेद), ऋग्. ८।९८।११

अथर्व.

२०।१०८।२

(शतक्रतो) सैकड़ों पराक्रम तथा यज्ञ करने वाले हे इन्द्र ! (वसो) हे जगन्निवास! (त्वं हि नः पिता) निश्चय ही तुम्हीं हमारे पिता तथा (त्वं माता बभूविथ) तुम्हीं हमारी माता हो (अधा ते सुम्नम् ईमहे) अतः हम तुम से सुख की प्रार्थना करते हैं।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित्।।

अथर्व. ७।५०।८

(कृतं मे दक्षिणे हस्ते) मेरे दाहिने हाथ में कर्म हो, प्रयास हो, पुरुषार्थ हो (जयः मे सव्य आहितः) तथा मेरे बायें हाथ में जय हो, विजय हो। (गोजित् अश्वजित् हिरण्यजित् धनंजयः भूयासम्) मैं गौवों, अश्वों, सुवर्ण एवं विविध प्रकार के धनों का विजेता बनूँ। मनुष्य को सदा श्रेष्ठ कर्म करके विजयश्री, लक्ष्मी एवं ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहिये।

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः।।

अथर्ववेद, ११।२।१६

हे परमेश्वर! आपको सायंकाल में नमस्कार है, प्रातःकाल में नमस्कार है, रात्रि में नमस्कार है तथा दिन में नमस्कार है। आपके सर्वोत्पादक एवं सर्व संहारक दोनों प्रकार के स्वरूपों को नमस्कार है।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष¦शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व¦ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।।

यजु.३६। १७

(द्यौः शान्ति☺ द्युलोक हमें शान्ति प्रदान करे, अन्तरिक्ष हमें शान्ति प्रदान करे (पृथिवी शान्ति☺ पृथिवी हमें शान्ति प्रदान करे, (आपः शान्ति☺ जल हमें शान्ति प्रदान करे (ओषधयः शान्ति☺ ओषधियाँ हमें शान्ति प्रदान करें, (वनस्पतयः शान्ति☺ वनस्पतियाँ हमें शान्ति प्रदान करें, (विश्वे देवाः शान्ति☺ समस्त देव एवं विद्वान् हमें शान्ति प्रदान करें, (ब्रह्म शान्ति☺ ब्रह्म तथा वेद हमें शान्ति प्रदान करें, (सर्वं शान्ति☺ समस्त जगत हमें शान्ति प्रदान करे (शान्तिः एव शान्ति☺ चारों ओर शान्ति ही शान्ति हो (सा शान्तिः मा एधि) तथा वह परम शान्ति मुझे प्राप्त हो ।

भवानी शङ्करौ वन्दे
श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः
स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।

रामचरित मानस. १।२

जिस श्रद्धा एवं विश्वास के बिना सिद्ध पुरुष भी अपने हृदय में स्थित ईश्वर के दर्शन नहीं कर पाते उन श्रद्धा रूपी पार्वती जी तथा विश्वास रूपी शङ्कर जी को प्रणाम करता हूँ।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं
सुरेशं,
विश्वाधारं गगन सदृशं मेघवर्णं
शुभाङ्गं ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं,
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ।।

शान्ति स्वरूप तथा शान्ति को देने वाले, शेषनाग की शैय्या पर

शयन करने वाले, जिनकी नाभि में कमल है, ऐसे देवताओं के ईश्वर, संसार को धारण करने वाले, आकाश के समान व्यापक, मेघ वर्ण तथा अत्यन्त सुन्दर अङ्गों वाले, देवी लक्ष्मी जी के पति, कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले, योगियों द्वारा ध्यान से प्राप्त किये जाने वाले, समस्त प्रकार के भयों को नष्ट करने वाले तथा समस्त लोकों के स्वामी भगवान् विष्णु को प्रणाम करता हूँ।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।।

आप ही वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति तथा प्रपितामह हैं। आपके लिये सहस्रों बार प्रणाम हो, आपको पुनः पुनः नमन एवं प्रणाम।

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां
जगद्व्यापिनीम्,
वीणापुस्तकधारिणीमभयदाम् जाड्यान्धकारापहाम्
।
हस्ते स्फाटिक मालिकाम् विदधतीं
पद्मासनेसंस्थिताम्,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां
शारदाम् ।।

जो अत्यन्त गौर वर्ण की हैं, जो ब्रह्म विचार की परम तत्व हैं, जो समस्त संसार में व्याप्त हैं, जो हाथों में वीणा तथा पुस्तक धारण किये हुये हैं, जो अभय देने वाली, मूर्खतारूपी अन्धकार को दूर करने वाली हैं तथा जो हाथ में स्फटिक मणि की माला लिये हैं, उन कमल के आसन पर विराजमान बुद्धि प्रदान करने वाली आद्या परमेश्वरी भगवती सरस्वती की मैं वन्दना करता हूँ।

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युत शङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा।।

जो कुन्द के पुष्प, चन्द्रमा तथा तुषार के समान श्वेत हार एवं शुभ्र वस्त्रों को धारण करने वाली हैं, जिनके हाथ उत्तम वीणा से सुशोभित हैं ऐसी कमल के आसन पर विराजमान ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों द्वारा सदैव वन्दित, सब प्रकार की जड़ता को नष्ट करने वाली भगवती सरस्वती मेरी रक्षा करें।

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सित राज्यलक्ष्मीं,
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
माया मृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दं ।।

श्रीमद्भागवत, ११।५।३४

अत्यन्त कठिनायी से त्याग किये जानी वाली, देवताओं के द्वारा भी वाञ्छित राज्यलक्ष्मी का त्याग करके अपने पिता के वचन का सम्मान करते हुये वन को चले जाने वाले तथा अपनी पत्नी द्वारा इच्छित मायामृग के पीछे दौड़ते वाले हे

धर्मनिष्ठ महापुरुष ! मैं आपके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्ट दोहं,
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दं ।।

श्रीमद्भागवत, ११।५।३३

सदा ध्यान किये जाने योग्य, अपने भक्तों के पराभव को दूर करके उन्हें सफलता दिलाने वाले, उन्हें अभीष्ट की प्राप्ति कराने वाले, परम तीर्थ स्वरूप, शिव तथा ब्रह्मा आदि के द्वारा भी वन्दनीय, सब को शरण देने वाले, अपने सेवकों की विपत्तियों तथा कष्टों को दूर करन वाले, सब की रक्षा एवं पालन पोषण करने वाले तथा भव सागर से पार कराने वाले पोत के समान हे महा पुरुष! मैं आपके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ।

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि में परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।

दुर्गासप्तशती, अर्गलास्तोत्रम्. १२

हे देवि! मुझे सौभाग्य और आरोग्य दीजिये, परम सुख दीजिये, रूप दीजिये ,जय दीजिये. यश दीजिये और मेरे शत्रुओं का नाश कीजिये।

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

दुर्गासप्तशती, ५।२२

जो देवी सब प्राणियों में बुद्धिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार है, प्रणाम है, बारंबार नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

दुर्गासप्तशती, ५।३४

जो देवी सब प्राणियों में शक्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार है, प्रणाम है, बारंबार नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

दुर्गासप्तशती, ५।५२

जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार है,

प्रणाम है, बारंबार नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

दुर्गासप्तशती, ५।५८

जो देवी सब प्राणियों में लक्ष्मीरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार है, प्रणाम है, बारंबार नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

दुर्गासप्तशती, ५। ७३

जो देवी सब प्राणियों में माँ के रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार है, प्रणाम है, बारंबार नमस्कार है।

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद,
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं,
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य।।

दुर्गासप्तशती, ११।३

शरणागत की पीड़ा दूर करने वाली हे देवि ! हम पर प्रसन्न होइये। सम्पूर्ण जगत् की माता ! प्रसन्न होइये । हे विश्वेश्वरि! विश्व की रक्षा कीजिये। हे देवि! तुम्हीं चराचर जगत् की अधिष्ठात्री हो।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके
।
शरण्येत्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते।।

दुर्गासप्तशती, ११।१०

हे नारायणि! सब प्रकार का मङ्गल प्रदान करने वाली, मङ्गलमयी, कल्याण करने वाली, समस्त पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाली,

शरणागतवत्सला, त्र्यम्बके गौरि आपको नमस्कार है।

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे

।

सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तुते ।।

दुर्गासप्तशती, ११।१२

शरण में आये हुये दीनों एवं पीड़ितों की रक्षा में सदा संलग्न रहने वाली तथा सब के दुःखों को दूर करने वाली हे नारायणि, हे देवि! आपको नमस्कार है।

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा,

रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।

त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां,

त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ।।

दुर्गासप्तशती, ११। २९

हे देवि! प्रसन्न होने पर आप समस्त रोगों को नष्ट करने वाली तथा रुष्ट होने पर समस्त मनोवाञ्छित कामनाओं का नाश करने वाली हो। आपकी शरण में आये हुये लोगों पर कभी विपत्ति नहीं आती। आपके आश्रय में रहने वाले पुरुष दूसरों को आश्रय देने के लिये समर्थ हो जाते हैं।

ब्रह्म का निरूपण

पुरुष एवेद सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।

ऋग्वेद,१०।९०।२, (पाठभेद), अथर्ववेद,१९।६।४, (पाठभेद),
यजुर्वेद,३१।२
सामवेद पूर्वाचिक, ६। ४। ५-६, क्र. सं., ६१९, ६२० (पाठभेद)

भूत, वर्तमान तथा भविष्य में, जो कुछ था, है और होगा वह सब पुरुष ही है, ब्रह्म ही है। वह उस अमृतत्व अर्थात् जीवात्मा का भी ईश्वर है, स्वामी है, जो शरीर में अन्न के साथ बढ़ता है। आत्मा शरीर में व्याप्त रहता

है और शरीर अन्न से बढ़ता है किन्तु आत्मा के बिना शरीर नहीं बढ़ सकता अतः मन्त्र में आलंकारिक ढंग से आत्मा को ही अन्न के साथ बढ़ने वाला कहा गया है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।।

ऋग्वेद, १०।९०।४,
यजुर्वेद, ३१।४

उस परब्रह्म के एक अंश से उत्पन्न होने वाली यह सृष्टि परिवर्तित होती रहती है, पुनः पुनः उत्पन्न एवं लय होती रहती है किन्तु उसके तीन पाद अर्थात् वह पूर्ण पुरुष अपने अमृत स्वरूप में सदा अविकारी, अपरिवर्तनीय आनन्दमय एवं ध्रुव होकर (ऊर्ध्व) सबके ऊपर प्रकाशित रहता है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।

अथर्व. ९।१०।२८, ऋग्. १।१६४।४६

ईश्वर एक ही है। उसी का विद्वान् लोग बहुत प्रकार से, अनेक नामों से वर्णन करते हैं। उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम तथा मातरिश्वा कहते हैं।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि भिन्न भिन्न देवता नहीं हैं, प्रत्युत् एक परमात्मा के ही भिन्न भिन्न नाम हैं। यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि अग्नि, वायु, मित्र, वरुण, आदित्य, चन्द्रमा आदि के अर्थ प्रत्येक स्थान पर परमात्मा नहीं होते, प्रत्युत मन्त्र के सन्दर्भ के अनुसार बदल जाते हैं।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तदब्रह्म ता आपः स
प्रजापतिः ।।

श्वेताश्वतर उप. ४।४।२, यजु. ३२।१

वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र है, वही जल है, वही प्रजापति है तथा वही ब्रह्म है।

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि उपरोक्त अनेक नामों से एक ब्रह्म का ही बोध होता है। स्पष्ट है कि वेद में बहु देवता वाद नहीं है, केवल एक ब्रह्म की ही उपासना का विधान है।

एको देवः सर्व भूतेषु गूढः,
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः,
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।

श्वेताश्वतर उपनिषद्, ६। ११

(एकः देवः सर्व भूतेषु गूढ☺ वह देव केवल एक है तथा समस्त प्राणियों एवं पदार्थों में अन्तर्यामी रूप से स्थित है। गूढ का तात्पर्य यह है कि वह सब भूतों में स्थित होते हुये भी देखा नहीं जा सकता । वह (सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा) सर्वव्यापी और सब प्राणियों का अन्तरात्मा है, (कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवास☺ समस्त प्राणियों के कर्मों

का फल देने वाला है तथा समस्त प्राणियों का आधार है, समस्त प्राणी उसी में निवास करते हैं, जिसके कारण उसे जगन्निवास कहा जाता है। (साक्षी चेता केवलो निर्गुणः च) वह सभी प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को तथा समस्त संसार के सम्पूर्ण व्यापार को देखने वाला है तथा स्वयं निर्लिप्त, विशुद्ध एवं ज्ञानस्वरूप होते हुये वह समस्त प्राणियों को चेतना, प्रेरणा एवं ज्ञान प्रदान करने वाला है और सत्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों से ऊपर है ।

वायुर्यथौको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो
बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो
बहिश्च ।।

कठोपनिषद्. २।२।१०

जिस प्रकार संसार में प्रविष्ट एक ही वायु नाना रूपों वाली वस्तुओं में प्रवेश करके उन्हीं के समान रूप वाला हो जाता है, उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुये भी समस्त प्राणियों में उन्हीं के समान रूपवाला होकर उनके अन्दर तथा बाहर स्थित रहता है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

मुण्डकोपनिषद् २।२।१०, श्वेताश्वतर उपनिषद्, ६।१४, कठोपनिषद् २।२।१५

वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, न तारागण, ये बिजलियाँ भी वहाँ प्रकाशित नहीं होतीं, फिर यह अग्नि वहाँ कैसे प्रकाशित हो सकता है ६ उस परब्रह्म के प्रकाशित होने से ही यह सूर्यादि उसके प्रकाश से प्रकाशित होते

हैं । उसी के प्रकाश से यह समस्त जगत् प्रकाशित होता है, आलोकित एवं सुशोभित होता है ।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर¦ शुद्धम -पापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथा- तथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।

यजु. ४०।८

वह सर्वव्यापक, वीर्यवान्, सर्वशक्तिमान्, तेजस्वी, शरीर रहित, निराकार, किसी प्रकार के घाव अथवा छिद्र आदि से रहित, अक्षत, स्नायु तन्तु आदि से रहित, पवित्र, निर्मल, पाप रहित, क्रान्तदर्शी, सर्वज्ञ,

सर्वदृष्टा, त्रिकालदृष्टा, सब प्राणियों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला, सर्वोपरि, सर्वनियन्ता, स्वयं ही प्रकट होने वाला, स्वयं अपनी ही सत्ता तथा शक्ति से स्थित रहने वाला शाश्वत रूप से अनादि काल से ठीक ठीक, यथायोग्य, यथार्थ भाव से समस्त पदार्थों अथवा कार्यों की व्यवस्था करता है।

गीता २।५२ में 'मोह कलिलं' शब्द आया है।

यो विद्यात्सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्स विद्याद् ब्राह्मणं महत्।।

अथर्व. १०।८।३७

(यः विततं सूत्रं विद्यात्) जो उस सर्वत्र फैले हुये सूत्र को जानता है, (यस्मिन् इमाः प्रजाः प्रोताः) जिसमें ये प्रजायें पिरोई हुई हैं और (सूत्रस्य सूत्रं यः विद्यात्) जो उस सूत्र के सूत्र को भी जानता है, (सः महत् ब्राह्मणं विद्यात्) वह उस महान् ब्रह्म को जानता है।

सूत्रात्मा वायु अथवा समष्टि प्राण ही वास्तव में वह सूत्र है जिसमें यह समस्त प्राणी पिरोये हुये हैं और इस विश्व प्राण का सूत्र वह ज्येष्ठ ब्रह्म है। कुछ विद्वानों के अनुसार वह सूत्र प्रकृति है जिसमें समस्त प्राणी पिरोये हुये हैं। इस प्रकार अन्ततोगत्वा यह सभी प्राणी ब्रह्म रूपी परम सूत्र में ही माला की मणियों की भाँति पिरोये हुये हैं।

अशब्दमस्पर्शमरुपमव्ययं

तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।

अनाद्यनन्तं महत: परं ध्रुवं

निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।।

कठोपनिषद् १। ३। १५

जो शब्द अथवा वाणी से परे है, जिसे स्पर्श नहीं किया जा सकता,

जिसका कोई रूप नहीं है, जो अविनाशी है, जिसे जिह्वा से नहीं चखा जा सकता, जो नित्य है, गन्ध रहित है, अनादि है, अनन्त है, जो महत्तत्व से श्रेष्ठ तथा ध्रुव है, उस परब्रह्म को जानकर ही मृत्यु के मुख से छुटकारा प्राप्त होता है ।

परब्रह्म को जानना, उसके समीप पहुँचना उपासना से ही सम्भव है । इसके लिये साधक को निरन्तर जागरूक रह कर तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण समर्पण एवं अनन्य भक्ति की आवश्यकता होती है ।

अणोरणीयान्महतो महीया.

नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको

धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ।।

श्वेताश्वतर उप. ३।२०, कठोपनिषद्. १।२।२०

हृदय रूपी गुहा में रहने वाला परमात्मा सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। उस परमात्मा की महिमा को कामना एवं शोक रहित साधक, परमेश्वर की कृपा से ही देख पाता है।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।

गीता. १३।१३

वह परमात्मा सब ओर हाथ तथा पैरवाला, सब ओर नेत्र, शिर एवं मुख तथा सब ओर कान वाला है। वह समस्त संसार को आवृत्त एवं व्याप्त करके स्थित है।

ओ३म्

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त¦
शरीरम् ।

ओ३म् क्रतोस्मर । क्लिबे स्मर । कृत¦
स्मर ।।

यजुर्वेद, ४०। १५

(वायुः अनिलं अमृतम्) मृत्यु के समय यह प्राण वायु अमृत अर्थात् अविनाशी कारण रूपी समष्टि वायु में विलीन हो जाता है (अथ इदं शरीरम् भस्मान्तं) और इस शरीर का अन्त भस्म के रूप में हो जाता है। (ओ३म् कृतो स्मर) हे कर्म करने वाले जीव! ओ३म् का स्मरण करो । (क्लिबे स्मर) अपनी सामर्थ्य की वृद्धि के लिये ओम् का स्मरण करो। (कृतं स्मर) अपने द्वारा किये गये कर्मों का स्मरण करो।

ओ३म् क्रतो स्मर ।

हे कर्म करने वाले जीव ओ३म् का स्मरण करो।

ओ३म् का ज्ञान, उसका जप तथा उसकी साधना ही पुरुष के परम कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता ।
स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ।।

मनु. ११।२६५

संसार का आदिकारण, तीन अक्षर वाला जो ‘ओ३म्’ वाच्य ब्रह्म है, जिसमें समस्त त्रयी विद्या अर्थात् वेदविद्या

प्रतिष्ठित है, वह स्वयं ही गुह्य अर्थात् अदृश्य त्रिवृत् वेद है, जो उस परब्रह्म को जानता है, वही वेदवित् है।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ।।

कठोपनिषद्, १।२।१६

यह अक्षर ही, यह अविनाशी ओ३म् ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही सर्वश्रेष्ठ

है। इस अक्षर को ही जानकर, जो जिस वस्तु की इच्छा करता है, वह उसको प्राप्त हो जाती है अर्थात् इसके ज्ञान तथा इसकी उपासना से पुरुष को अभीष्ट फल एवं कामना की प्राप्ति होती है ।

एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।।

कठोपनिषद्ए १। २। १७

यह ओ३म् ही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही आलम्बन सर्वश्रेष्ठ है । इस आश्रय को, आलम्बन को भली प्रकार ज्ञानपूर्वक जानकर, प्राप्त कर, पुरुष ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है ।

ओमित्येदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ।।

माण्डूक्य उपनिषद्, १।२।१

(ओम् इति) ओ३म् (एतद् अक्षरं) यह अविनाशी ब्रह्म है । (इदं सर्वं तस्य उपव्याख्यानम्) यह सब, सारा संसार उसी का विस्तार है, उसी की महिमा है । (भूतं भवत् भविष्यत्) भूत, वर्तमान तथा भविष्य (इति सर्वं ओङ्कार: एव) यह सब ओङ्कार ही है । (च यत् अन्यत् त्रिकाल अतीतम्) और इसके अतिरिक्त तीनों कालों से जो बाहर है, (तद् अपि ओङ्कार एव) वह भी ओङ्कार ही है ।

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनि: सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ।

माण्डूक्य उपनिषद्, ६ ।।

(एष: सर्वेश्वर☺ यह ओ३म् सर्वेश्वर है, (एष: सर्वज्ञ☺ यह सर्वज्ञ है, (एष: अन्तर्यामी) यह सब में अन्तर्यामी रूप से स्थित है, (एष: सर्वस्य योनि☺ यह समस्त जगत् का कारण है और (हि) निश्चय ही (भूतानाम्

प्रभवाप्ययौ) यह समस्त प्राणियों एवं पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का कारण है ।

ओमिति ब्रह्म। ओमितीद॒ सर्वम्।

तैत्तिरीय उपनिषद, १। ८

ओ३म् यह ब्रह्म है। यह समस्त संसार ओ३म् है, उसी का रूप है उसी की महिमा है, कण कण में उसी की सत्ता प्रतिभासित हो रही है।

अध्यात्मम् आत्मभैषज्यम् आत्मकैवल्यम् ओङ्कार: ।

गोपथ ब्राह्मण, पूर्वभाग १, कण्डिका, ३० ।।

ओङ्कार अध्यात्मम्, आत्मभैषज्य तथा आत्मकैवल्य है ।

अध्यात्मम्दृ ओ३म् आत्मज्ञान का अधिकरण अर्थात् आधार है। ओ३म् का ध्यान करने से आत्म ज्ञान प्राप्त होता है ।

आत्मभैषज्यम्दृ ओ३म् आत्मा का औषध है । इसके जप, ध्यान तथा चिन्तन से आत्मा के समस्त दोष दूर हो जाते हैं और आत्मा पूर्णरूपेण निर्मल हो जाता है ।

आत्मकैवल्यम्दृ ओ३म् का ध्यान आत्मा को मोक्ष देने वाला है ।

प्रणवो धनु: शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।

मुण्डक उपनिषद्, २।२।४

(प्रणव: धनु☺ ओंकार को धनुष, (शर: आत्मा) आत्मा को वाण (ब्रह्म तत् लक्ष्यम् उच्यते) तथा ब्रह्म को उसका लक्ष्य कहा जाता है । अतः (अप्रमत्तेन शरवत्) आलस्य रहित होकर अपने आत्मा को वाण के सदृश ब्रह्म रूपी लक्ष्य में (वेद्धव्यम्) बींधना चाहिये तथा (तन्मय: भवेत्) उस ब्रह्म में तन्मय हो जाना चाहिये ।

इस प्रकार भक्ति पूर्वक किये गये ओ३म् के जप तथा ध्यान से और श्रेष्ठ कर्मो एवं ज्ञान की सहायता तथा करुणामय भगवान् की कृपा से मनुष्य निश्चित रूप से ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है ।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं
चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत् ।।

श्वेताश्वतरोपनिषद्, १। १। १४

(स्वदेहम्) अपने शरीर को (अरणिं) नीचे की अरणि, (च प्रणवं उत्तरारणिम् कृत्वा) तथा ओङ्कार को ऊपर की अरणि बनाकर (ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्) ध्यान के द्वारा निरन्तर मन्थन रूपी अभ्यास करके (निगूढवत्) अरणि में छिपे हुये अग्नि की भाँति हृदय में गूढरूप से स्थित (देवं पश्येत्) परमेश्वर का साक्षात् दर्शन करे।

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविध: स्मृत:।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता: पुरा ।।

गीता १७ । २३

(ॐ तत् सत् इति ब्रह्मण: त्रिविध: निर्देश: स्मृत☺ ॐ, तत्, सत् इन तीन प्रकार से सच्चिदानन्द घन ब्रह्म का निर्देश किया गया है । उसी के द्वारा सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञों की रचना की गयी है ।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतप: क्रिया: ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ता: सततं ब्रह्मवादिनाम् ।।

गीता, १७। २४

अत: ब्रह्मवादियों की, वेद के विद्वानों की शास्त्र विधि से नियत की हुयी यज्ञ, दान तथा तप की क्रियायें सदा ओ३म् के उच्चारण के साथ ही प्रारम्भ होती हैं ।

वास्तव में सभी वेदानुकूल श्रेष्ठ कर्म तथा वेद मन्त्रों का पाठ ओ३म् का उच्चारण करने के उपरान्त ही किये जाने का विधान है ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
य: प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।।

गीता, ८। १३

जो पुरुष 'ॐ, इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुये तथा (माम्) मुझको अर्थात् भगवान् को स्मरण करते हुये शरीर त्याग करके जाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है ।

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति
तपा॒सि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पद॒संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।

कठोनिषद्, १। २। १५

समस्त वेद जिस परम पद का प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप जिसको प्राप्त करने के साधन हैं, जिसको प्राप्त

करने की इच्छा से साधक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, वह पद तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ, वह ओ३म् है ।

तस्य वाचकः प्रणवः ।

योगदर्शन, समाधि पाद, २७ ।

उस परब्रह्म का वाचक प्रणव अथवा ओ३म् है । परब्रह्म तथा ओ३म् का यह वाच्य-वाचक सम्बन्ध कृत्रिम नहीं प्रत्युत नित्य है ।

वास्तव में ओ३म् ही भगवान् का सर्वश्रेष्ठ एवं मुख्य नाम नाम है।

तज्जपस्तदर्थभावनम्।

योगदर्शन, समाधि पाद, २८ ।।

प्रणव अथवा ओ३म् का ध्यानपूर्वक एकाग्र चित्त से तथा भक्तिभाव से जप करना चाहिये और उसी की भावना, उसी का विचार श्रद्धापूर्वक अपने हृदय, मन तथा बुद्धि में स्थिर करना चाहिये ।

अवतेष्टिलोपश्च ।

उणादि कोष, प्रथम पादः, सूत्र, १४२

इस सूत्र के अनुसार 'अव रक्षणे' धातु से मन प्रत्यय करने पर ओ३म्

शब्द सिद्ध होता है तथा इसके साथ कार 'प्रत्यय' करने पर ओंकार शब्द निष्पन्न होता है ।

स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है-

अवतीत्योम् आकाशमिव व्यापकत्वात्खम्, सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म। सत्यार्थ प्रकाश (प्रथम समुल्लास)

रक्षा करने से ओम्, आकाशवत् व्यापक होने से खम् तथा सबसे बड़ा होने से ब्रह्म, ईश्वर के नाम हैं ।

जन्माद्यस्य यतः । वेदान्त दर्शन, १। १। २

इस संसार का जन्म आदि अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय जिससे होती है वह ब्रह्म है ।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति ।।

तैत्तिरीय उपनिषद्, ३। १

निश्चय ही ये सब प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं तथा अन्त में इस लोक से प्रयाण करते हुये जिसमें प्रवेश करते हैं, उसको जानने की इच्छा करो, वह ब्रह्म है ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितंमुखम्। ॐयोऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ओ३म् खं ब्रह्म ।।

यजु. ४०।१७

(सत्यस्य मुखम् हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितम्) सत्य का मुख हिरण्मय पात्र से ढंका हुआ है, (यो असौ आदित्ये पुरुषः) जो वह आदित्य में पुरुष है अर्थात् पूर्ण परमात्मा है, (सः असौ अहम्) वही (असौ) प्राणों में रहने वाला मैं

(जीवात्मा) हूँ। (ओ३म् खं ब्रह्म) आकाश के समान सर्वव्यापक ब्रह्म ओ३म् है, अर्थात् ओ३म् पद वाच्य है।

आत्मा एवं परमात्मा

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य
नश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ।।

अथर्व. ९।९।२०, ऋग्. १।१६४।२०

एक साथ रहने वाले तथा उत्तम पंखो वाले दो मित्र पक्षी (आत्मा एवं परमात्मा) एक ही संसार रूपी वृक्ष पर रहते हैं। उन दोनों में से एक (जीवात्मा) वृक्ष के पके हुये फलों को स्वाद लेकर खाता है, संसार के ऐश्वर्य का उपभोग करता है तथा दूसरा (परमात्मा) न खाता हुआ भली प्रकार देखता है।

आत्मानꣳ रथिनं विद्धि शरीरꣳ रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।

कठोपनिषद्. १।३।३

जीवात्मा को रथ का स्वामी और शरीर को रथ समझो तथा बुद्धि को सारथि और मन को ही लगाम समझो जिससे इन्द्रिय रूपी अश्वों को नियन्त्रण में रखा जाता है।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाꣳस्तेषु गोचरान् ।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।।

कठोपनिषद्. १।३।४

ज्ञानीजन इन्द्रियों को घोड़े, इन्द्रियों के विषयों को उन घोड़ों के विचरने का मार्ग तथा शरीर, इन्द्रियों और मन से युक्त जीवात्मा ही भोक्ता है, ऐसा कहते हैं।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।

गीता. २।१३

जीवात्मा की इस देह में जिस प्रकार बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था होती है, उसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् आत्मा अन्य शरीर को प्राप्त करता है। धीर पुरुष इस विषय में मोहित नहीं होते।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा.
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

गीता. २।२२

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीर को धारण करता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

गीता. २।२३

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा सकती है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

गीता. २।२७

जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का पुनर्जन्म निश्चित है। अतः जन्म मृत्यु की इस अपरिहार्य प्रक्रिया के विषय में तुम्हें

शोक करना उचित नहीं है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

गीता१५।७

शरीर में जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही प्रकृति में स्थित मन तथा पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करके शरीर में रखता है।

तात्पर्य यह है कि बुद्धि, मन तथा इन्द्रियाँ सभी आत्मा पर ही आधारित हैं और आत्मा के साथ ही शरीर में रहती हैं।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

गीता. ६।५

अपने द्वारा अपना तथा अपनी आत्मा का उद्धार करे और अपनी आत्मा को अधोगति में न डाले। यह जीवात्मा स्वयं ही अपना बन्धु है और स्वयं ही अपना शत्रु है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्
।

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।।

गीता, ८। ६

हे कुन्ती पुत्र ! यह जीव अन्त में जिस जिस भाव का स्मरण एवं चिन्तन करता हुआ शरीर छोड़ता है, वह (तद्भावभावित☺ उसी भाव से भावित होकर अर्थात् सतत् चिन्तन करने के कारण उस भाव का अभ्यस्त होकर (सदा तं तं एव एति) सदैव उसी भाव को प्राप्त होता है ।

इसीलिये यह आवश्यक है कि अपना कल्याण चाहने वाला पुरुष सदा नियमित रूप से ओ३म् का चिन्तन करे जिससे वह ओ३म् अर्थात् परमात्मा के भाव से युक्त होकर अन्त समय में भी ओ३म् का स्मरण करके परमात्मा को प्राप्त कर सके ।

आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः ।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव
रिपुरात्मनः ।।

विदुर नीति. २।६४

मनुष्य को स्वयं वश में किये हुये अपने मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों की सहायता से अपने आत्मा को ढूँढना चाहिये, अपने आत्मा को पहचानना चाहिये। निःसन्देह मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु और स्वयं ही अपना शत्रु है।

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना
जितः ।
स एव नियतो बन्धुः स
एव नियतो रिपुः ।।

विदुर नीति. २।६५

जिसने स्वयं अपने को अर्थात् अपने मन तथा इन्द्रियों को जीत लिया है, वह निश्चित रूप से अपने आत्मा का बन्धु है और जिसने अपने आप को नहीं जीता है वह निश्चय ही अपने आत्मा का शत्रु है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।

गीता. ३।४२

इन्द्रियों को स्थूल शरीर से पर अर्थात् श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म कहते हैं, इन इन्द्रियों से श्रेष्ठ मन है,

मन से श्रेष्ठ बुद्धि है और बुद्धि से अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सूक्ष्म वह आत्मा है।

वेद

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।।

ऋग्. १०।९०।९, यजु. ३१।७
कृष्ण यजु. ३५।१०, अथर्व. १९।६।१३

सभी आहुतियाँ जिसके लिये दी जाती हैं, उस सर्वपूज्य, सर्वोपास्य, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ परब्रह्म से ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुये, उससे अथर्ववेद उत्पन्न हुआ तथा उसी से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ।

अर्थ कामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।।

मनु. २।१३

जो धन सम्पत्ति के लोभ तथा काम अर्थात् विषय वासना के भोगों में लिप्त नहीं होता, उसी को धर्म का ज्ञान होता है। धर्म को जानने
की इच्छा करने वालों के लिये वेद ही परम प्रमाण हैं।

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ।।

मनु. २।१६६

श्रेष्ठ ब्राह्मण तप करता हुआ सदैव वेद का अध्ययन करे। वेद का अभ्यास और तदनुसार कर्म करना ही ब्राह्मण का परम तप कहा जाता है।

वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात् तत्र मुह्यन्ति सूरयः ।।

महर्षि वेदव्यास

साक्षात् स्वयम्भू नारायण ही वेदों के रूप में प्रकट हुये हैं, ऐसा हमने सुना है। वेदों के ईश्वरात्मा होने से अर्थात् उनके ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण बड़े बड़े विद्वान् भी उनका वास्तविक अर्थ समझने में मोहित हो जाते हैं, भ्रमित हो जाते हैं ।

किन्तु फिर भी कुछ मूर्ख एवं मदान्ध व्यक्ति अनर्गल अर्थ प्रकाशित करने में नहीं हिचकिचाते। इसके अतिरिक्त कुछ लोग ऐसे नास्तिक, वेदनिन्दक अथवा विधर्मियों द्वारा पोषित हैं जिनका एकमात्र उद्देश्य वेदों का अपमान करना है। ये लोग भी वेदों के विषय में अनेक अनर्गल तथा असत्य बातें प्रचारित एवं प्रसारित करते रहते हैं और वेदों के

गलत अर्थ प्रकाशित करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। यह दुःख एवं चिन्ता का विषय है कि हमारे विद्वान् एवं

नवयुवक ऐसे लोगों का प्रतिकार करने के लिये कोई प्रभावी कार्यवाही नहीं करते।

योऽवन्मन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ।।

मनु. २।११

जो मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्त ग्रन्थ का अपमान करे, उसको श्रेष्ठ लोगों द्वारा बहिष्कृत कर दिया जाना चाहिये। वेद की निन्दा करने वाला नास्तिक होता है।

विभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्।।

मनु. १२।९९

सनातन वेदशास्त्र ज्ञान एवं कर्म आदि के द्वारा समस्त प्राणियों को धारण करने वाला है अस्तु इसे प्राणियों के कल्याण के लिये सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है।

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ।।

मनु. १२।८३

वेदाभ्यास अर्थात् वेद का पठन पाठन, तप, ज्ञान, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा (किसी जीव को न मारना), गुरु की सेवा सुश्रूषा करना, यह सभी कर्म परम कल्याणकारी होते हैं।

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्।।

मनु. २।१५४

अधिक आयु हो जाने से, बालों के श्वेत हो जाने से, अधिक धन

होने से अथवा बड़े कुटुम्ब से कोई महान नहीं होता। ऋषियों के बताये हुये धर्म के अनुसार जो वेद शास्त्रों का ज्ञाता है, वही महान् है।

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ।।

मनु. ४।१४७

आलस्य का परित्याग कर यथा काल नित्य वेदों का अभ्यास करे। यही परम धर्म है, शेष सब उपधर्म हैं।

धर्म

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।।

वैशेषिक दर्शन. १।२

जिससे सब प्रकार का अभ्युदय तथा परम कल्याण हो, वही धर्म है।

हमारे आदि पुरुष भगवान् मनु द्वारा धर्म के लक्षण निम्न प्रकार बताये गये हैं –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणं ।।

मनुस्मृति ६। ९२

धैर्य, दृढ़ता, क्षमा, मन का संयम, चोरी न करना, शरीर मन एवं
बुद्धि की पवित्रता, इन्द्रियों का निग्रह, सद्बुद्धि, विद्या, सत्य तथा अकारण क्रोध न करना, ये धर्म के दश लक्षण हैं ।

इन लक्षणों के अनुरूप आचरण करना धर्म है, किसी प्रकार का दिखावा अथवा ढोंग धर्म नहीं है ।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणं ।।

मनु. २।१२

वेद, स्मृति, सदाचार, सत्पुरुषों का आचरण और अपने आत्मा

को प्रसन्न तथा सन्तुष्ट करने वाला, अन्तरात्मा के अनुसार किया गया श्रेष्ठ आचरण, ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण कहे जाते हैं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

गीता. ४।७

हे भारत ! जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब मैं अपने को सृजन करता हूँ, साकार रूप से संसार में प्रकट होता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

गीता. ४।८

साधु पुरुषों की रक्षा करने के लिये, पापकर्म करने वाले दुष्टों का विनाश करने के लिये तथा धर्म की भली प्रकार स्थापना करने के लिये मैं युग युग में प्रकट होता, अवतरित होता हूँ।

द्रव्याणि भूमौ पशवश्च गोष्ठे
नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे
धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ।।

सुभाषित

मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् उसका धन पृथ्वी में गड़ा रह जाता है, पशु गोष्ठ में बँधे रह जाते हैं, स्त्री घर के द्वार पर छूट जाती है, परिजन श्मशान में छूट जाते हैं तथा शरीर चिता में भस्म हो जाता है। परलोक के मार्ग में केवल धर्म ही जीवात्मा के साथ जाता है।

समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ।।

मनु. ६।६६

समस्त प्राणियों में समत्व का भाव रखना, सबसे समता का

व्यवहार करना धर्म है, माला, तिलक आदि दिखावटी चिह्न धर्म का कारण नहीं हैं।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः
।।

चाणक्य नीति. १२।१२

शरीर अनित्य है, धन भी सदा रहने वाला नहीं है किन्तु मृत्यु सदा सन्निकट ही रहती है, अतः धर्म का संग्रह करना चाहिये।

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्
।।

हितोपदेश

बुद्धिमान को उचित है कि अपने को अजर अमर समझकर विद्या तथा धन का उपार्जन करे और मृत्यु केश पकड़े खड़ी है-यह सोचकर धर्म का आचरण करे।

यत्र धर्मोऽह्यधर्मेण सत्यं यत्राऽनृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः।।

मनु. ८।१४

जिस सभा में धर्म पर अधर्म तथा सत्य पर असत्य की विजय हो और जहाँ देखने वाले उसका विरोध न करें, उस सभा के समस्त सभासद मृतक के समान हैं।

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयं कृतम्।

तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद् धर्मं संचिनुयाच्छनैः ।।

विदुर नीति. ८।१८

मरने के बाद शरीर के भस्म हो जाने पर स्वयं किया हुआ कर्म ही मनुष्य के साथ जाता है, इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह यत्न पूर्वक धीरे धीरे धर्म का संग्रह करे।

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ।।

मनु. २।१५९

समस्त प्राणियों के प्रति अहिंसा एवं उनके कल्याण करने की शिक्षा देनी चाहिये। धर्म की इच्छा करने वाले को सदा मधुर तथा शालीनता युक्त वाणी ही बोलनी चाहिये।

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ।।

मनु. ४।२४१

मृत शरीर को लकड़ी और मिट्टी के ढेले के समान भूमि में छोड़कर बन्धु बान्धव विमुख होकर चले जाते हैं केवल धर्म ही पुरुष के साथ जाता है।

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ।

धर्म्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ।।

मनु. ४।२४२

अतः परलोक तथा दूसरे जन्म में सहायता के लिये शनैः शनैः नित्य धर्म का सञ्चय करना चाहिये क्योंकि धर्म की सहायता से ही जीव अन्धकार एवं दुःख से परिपूर्ण दुस्तर भवसागर को पार कर सकता है।

शनैः शनैः का तात्पर्य यह है कि धर्म का अनुष्ठान एक बार में शीघ्रता से नहीं किया जा सकता, उसके लिये नित्य प्रति श्रेष्ठ कर्मों को सम्पन्न करना पड़ता है।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत्।। मनु. ८।१५

नष्ट हुआ धर्म ही मारता है अर्थात् धर्म का पालन न करने से मनुष्य पतन की ओर चला जाता है, दुःख एवं कष्टों को प्राप्त करता है जब

कि रक्षा किया हुआ धर्म उन्नति की ओर ले जाता है। अतः अधर्म कहीं हमें नष्ट न कर दे यह विचार करके धर्म की रक्षा करना चाहिये, धर्म का पालन करना चाहिये।

अधर्म

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।

शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ।।

मनु. ४।१७२

जैसे गौ की सेवा करने का अथवा पृथिवी में बीज़ बोने का फल तुरन्त प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार किया हुआ अधर्म कभी तुरन्त फल नहीं देता परन्तु निश्चय ही वह अधर्माचरण धीरे धीरे दुष्ट कर्म करने वाले मनुष्य के जीवन के मूलों को काट देता है, नष्ट कर देता है।

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ।।

मनु. ४।१७४

अधर्म का आचरण करने से मनुष्य को जो तुरन्त लाभ तथा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है, उससे उस दुष्ट व्यक्ति को उस समय अपना कल्याण दिखायी देता है किन्तु बाद में वह समूल नष्ट हो जाता है।

सत्य

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।

चाणक्यनीति ५।१९

सत्य के द्वारा ही पृथ्वी को धारण किया गया है, सत्य से ही सूर्य तपता है, सत्य से ही वायु चलती है, सब कुछ सत्य में ही प्रतिष्ठित है। भगवान् के सत्य एवं अपरिवर्तनीय नियमों से ही प्रकृति की सारी क्रियायें चलती हैं।

सत्यमेव जयते नानृतं,
सत्येन पन्था विततो देवयानम् ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा,
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ।।

मुण्डकोपनिषद्. ३।१।६

सत्य की ही जय होती है, असत्य की नहीं। सत्य से ही वह देवयान मार्ग बना हुआ है जिस पर चलकर आप्तकाम ऋषि वहाँ पहुँचते हैं जहाँ सत्यस्वरूप परमात्मा का परमधाम है।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः
सनातनः ।।

मनु. ४।१३८

सत्य और प्रिय बोलना चाहिये, अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये। प्रिय बोलना चाहिये किन्तु असत्य नहीं बोलना चाहिये, यही सनातन धर्म है।

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।।

महाभारत, अध्याय १४१

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।।

ईशावास्योपनिषद्. १५ यजु, . काण्व संहिता ४०।१५

सोने के पात्र से सत्य का मुख ढंका हुआ रहता है। हे पालन पोषण करने वाले प्रभो! मेरे द्वारा सत्य धर्म का दर्शन किये जाने के लिये आप उस आवरण को हटा दीजिये।

सत्येन वायुरावति, सत्येनाऽऽदित्यो रोचते दिवि, सत्यं वाचः प्रतिष्ठा, सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति।

तैत्तिरीय आरण्यक, प्रपा. १० अनु. ६२

सत्य से अथवा सत्य रूपी ब्रह्म से अथवा ब्रह्म के सत्य नियमों से ही वायु रक्षा करती है, सत्य से आदित्य द्युलोक में प्रकाशित होता है, सत्य ही वाणी की प्रतिष्ठा है, सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है, अतएव सत्य को परम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यम् प्रतिष्ठितम् ।

प्रश्नोपनिषद्. १।१५

उनका ही यह ब्रह्मलोक है जिनमें तप एवं ब्रह्मचर्य है तथा जिनमें सत्य प्रतिष्ठित रहता है अर्थात् जो सत्याचरण पर दृढ़ रहते हैं।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

तैत्तिरीय उप. २।१

ब्रह्म सत्य, ज्ञानमय तथा अनन्त है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।।

यजु. १।५

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (व्रतपते) आप हमारे व्रत की रक्षा करने वाले हैं, (व्रतं चरिष्यामि) मैं व्रत का आचरण करूँगा। (तत् शकेयम्) मुझे उसके लिये शक्ति दीजिये ताकि मैं व्रत पर आचरण कर सकूँ। (तत् मे राध्यताम्) मेरा वह व्रत आप पूर्ण कराइये। (इदं अहम् अनृतात् सत्यं उपैमि) व्रत यह है कि मैं असत्य से सत्य को प्राप्त होता हूँ।

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम् ।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः।।

वाल्मीकि रामायण, अयोध्या. १०९।१०

सत्य का पालन करना एवं अत्याचार न करना ही राजाओं का सनातन धर्म है, आचार है। अतः राज्य सत्यात्मक होता है। सत्य में ही

सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है।

ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे ।

सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परं गच्छति
चाक्षयम्।।

वाल्मीकि रामायण, अयोध्या. १०९।११

ऋषियों तथा देवताओं ने सदा सत्य का ही आदर किया है। इस लोक में सत्यवादी मनुष्य मृत्यु के उपरान्त अक्षय परम धाम को जाता है।

उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः ।
धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते।।

वाल्मीकि रामायण, अयोध्या. १०९।१२

झूठ बोलने वाले मनुष्य से सब लोक उसी प्रकार डरते हैं जैसे साँप से। संसार में सत्य ही धर्म की पराकाष्ठा है और वही सब का मूल कहा जाता है।

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः
।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्।।

वाल्मीकि रामायण, अयोध्या. १०९।१३४

जगत् में सत्य ही ईश्वर है। सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य ही सब का मूल अथवा आधार है। सत्य से श्रेष्ठ अन्य कोई परम पद नहीं है।

दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च
तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्।।

वाल्मीकि रामायण, अयोध्या. १०९।१४

दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद, इन सब का आधार सत्य ही है, इसलिये सब को सत्य परायण होना चाहिये।

गायत्री

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् ।
तदित्यृचाऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ।।

मनु .२। ७७

परमेष्ठी प्रजापति ने ऋक्ए यजु तथा साम रूपी त्रयी विद्या से इस सावित्री ऋचा का एक एक पाद दुहकर निकाला है। गायत्री मन्त्र का प्रथम पाद, **'तत्सवितुर्वरेण्यम्'**, द्वितीय पाद, **'भर्गो देवस्य धीमहि'** तथा तृतीय पाद, **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** है।

एतदक्षरमेतांच जपन् व्याहृतिपूर्विकाम् ।
सन्ध्योर्वेदविद् विप्रो वेद पुण्येन युज्यते ।।

मनुस्मृति, २। ७८

(एतत् अक्षरम्) इस अविनाशी परब्रह्म के वाचक ओ३म् तथा (व्याहृति पूर्विकाम् एताम् च सन्ध्योः जपन्) भूः, भुवः, स्वः इन महाव्याहृतियों के साथ गायत्री मन्त्र का दोनों सन्ध्याओं में जप करते हुये, (वेद विद् विप्रः वेद पुण्येन युज्यते) वेदज्ञ विप्र वेदाध्ययन के पुण्य से युक्त होता है।

ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।

त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्
।।

मनुस्मृति ,२। ८१

जिसमें भू: भुव: स्व: इन तीन अव्यय महाव्याहृतियों के सहित आदि में ओङ्कार है, उस तीन पाद वाली सावित्री अथवा गायत्री को वेद का मुख समझना चाहिये।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायाम: परं
तप : ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते
।।

मनुस्मृति ,२।८३

ओंङ्कार परब्रह्म हैए प्राणायाम परम तप हैए सावित्री से श्रेष्ठ कुछ नहीं है तथा मौन रहने से सत्य भाषण श्रेष्ठ है । (अनेक स्मृतियों तथा पुराणों में भी इसी प्रकार का कथन है ।)

जपतां जुह्वतां नित्यं च
प्रयतात्मनाम् ।
ऋषीणां परमं जप्यं
गुह्यमेतन्नराधिप ।।

महाभारत, अनुशासन पर्व, ७४।१५

हे राजन् ! यह गायत्री, जप परायण, होमनिष्ठ तथा सदा सावधान चित्त वाले ऋषियों का परम जप्य एवं गुप्त मन्त्र है।

यानपात्रे च याने च प्रवासे
राजवेश्मनि ।
परां सिद्धिमवाप्नोति सावित्रीं ह्युत्तमां पठन् ।।

महाभारत, अनुशासन पर्व १५०। ६८

(यानपात्रे च) जहाज़ में (याने च) अथवा अन्य किसी सवारी में बैठकर (प्रवासे) विदेश में अथवा (राजवेश्मनि) राजद्वार में (उत्तमां हि सावित्रीं पठन्) उत्तम गायत्री मन्त्र का जप करने वाला व्यक्ति (परांसिद्धिं अवाप्नोति) परम सिद्धि को प्राप्त करता है । तात्पर्य यह है कि यात्रा करते
समय अथवा राजकीय कार्यों में कठिनायी उत्पन्न होने परए गायत्री जप से सफलता प्राप्त होती है और कठिनाइयाँ समाप्त हो जाती हैं ।

हस्तत्राणप्रदा देवी पततां
नरकार्णवे ।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो हृदये शुचिः
।।

शङ्ख स्मृति, १२। १२

(नरकार्णवे पततां हस्तत्राण प्रदा देवी) यह दिव्य गायत्री, नरक रूपी समुद्र में गिरने वालों को हाथ पकड़कर बचाने वाली है। (तस्मात् हृदये शुचिः ब्राह्मणः तां नित्यं अभ्यसेत्) अतः

ब्राह्मण को शुद्ध हृदय से उस गायत्री का नित्य अभ्यास करना चाहिये, उसकी उपासना करनी चाहिये।

सदाचार

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव
।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं
गमेमहि ।।

ऋग्. ५।५१।१५

हम सूर्य एवं चन्द्रमा के समान जगत् का कल्याण करने वाले मार्ग पर चलें, बार बार दान देने वालों, हिंसा न करने वालों तथा विद्वानों के साथ चलें अर्थात् उनके सम्पर्क में आयें तथा उनके अनुरूप आचरण करें।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त
एव च।
तस्मादस्मिन्त्सदा युक्तो नित्यं
स्यादात्मवान्द्विजः।।

मनु. १।१०८

वेद एवं वेदानुकूल स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का आचरण करना ही परम धर्म है। अतएव आत्मज्ञान के इच्छुक द्विज को सदैव सदाचार से युक्त रहना चाहिये।

आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते ।।

महाभारत अनु, पर्व. १०४।१५५

सदाचार से धर्म की उत्पत्ति होती है और धर्म से आयु बढ़ती है।

निवृत्ता मधुमांसेभ्यः परदारेभ्य एव च।
निवृत्ताश्चैव मद्येभ्यस्ते नराः स्वर्गगामिनः ।।

महाभारत अनु, पर्व. २३।८९

जो मद, मांस, मदिरा और परस्त्री से दूर रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोक में जाते हैं।

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रिया ।
चित्ते वाचि क्रियायां च साधुनामेकरूपता ।।

सुभाषित

जैसा मन वैसा वचन और जैसा वचन वैसा कर्म । इस प्रकार सज्जनों के मन, वचन तथा कर्म में एकरूपता होती है।

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तथा तथाऽस्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः।।

विदुरनीति. ३।४२

जैसे जैसे पुरुष शुभकर्मों में अपने मन को लगाता है, वैसे वैसे उसके सभी अर्थ अर्थात् प्रयोजन एवं इच्छायें पूर्ण होती जाती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ।।

मनु. २।१६.

जिसका मन और वाणी शुद्ध है तथा जो वाणी का सम्यक्, सुरक्षित तथा शान्तिपूर्ण उपयोग करता है, वही वेद वेदान्त के अध्ययन एवं तदनुसार आचरण का फल प्राप्त करता है।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्तस्तु हतो हतः ।।

विदुरनीति. ४।३.

वृत्त, अर्थात् चरित्र एवं आचार व्यवहार की रक्षा विशेष यत्न से करनी चाहिये, वित्त अर्थात् धन सम्पत्ति तो आती जाती रहती है। वित्त के क्षीण होने से मनुष्य का नाश नहीं होता परन्तु चरित्र का नाश होने से मनुष्य का पूर्णरूपेण नाश हो जाता है।

सन्ध्यायां न स्वपेद् राजन् विद्यां न च समाचरेत् ।
न भुञ्जीत च मेधावी तथायुर्विन्दते महत् ।।

महाभारत ,अध्याय, १.४

भीष्म जी युधिष्ठिर से कहते हैं कि हे राजन् ! बुद्धिमान पुरुष

सायंकाल गोधूलि बेला में न तो सोये, न विद्या पढ़े और न ही भोजन करे। इस नियम को पालन करने से वह बड़ी आयु को प्राप्त करता है।

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ।
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात् ।।

मनु. ४।२३७

असत्य से यज्ञ, अहंकार से तप, विद्वान् ब्राह्मण का अपमान करने से आयु तथा दान देकर प्रकट करने से दान नष्ट हो जाता है।

न भक्षयति यो मांसं न च हन्याश्च घातयेत्।
तन्मित्रं सर्वभूतानां मनः स्वायम्भुवो ब्रवीत्।।

सुभाषित

स्वायम्भुव मनु का कथन है कि जो मनुष्य मांस नहीं खाता है और न दूसरे की हिंसा करता अथवा कराता है, वह समस्त प्राणियों का मित्र होता है।

सत्यं वद धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः ।।

तैत्तिरीय उप. १।११।१ सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो तथा स्वाध्याय करने में प्रमाद न करो।

मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव। तैत्तिरीय उप. १।११।२

माता को देवता के तुल्य समझो, पिता को देवता के तुल्य समझो। आचार्य को देवता के तुल्य समझो तथा अतिथि का देव तुल्य सत्कार करो।

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफल भाग्भवेत् ।।

मनु. १।१०९

धर्माचरण से रहित विप्र वेदाध्ययन के फल को प्राप्त नहीं करता

किन्तु जो सदाचार से संयुक्त है वह वेद विहित कर्मों के फल को प्राप्त करता है।

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ।।

मनुस्मृति, २। ९७

दुष्टस्वभाव वाले विप्र के वेदपाठ, त्याग, यज्ञ, नियम अथवा तप आदि कर्म कभी सफल नहीं होते। अतः ब्राह्मण के लिये दुष्टता एवं दुराचार का परित्याग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।।

मनु. ४।७६

गीले पाँव अर्थात् पैर धोकर भोजन करना चाहिये है परन्तु गीले पैरों के साथ सोना नहीं चाहिये। जो मनुष्य पाँव धोकर भोजन करता है वह दीर्घजीवी होता है।

आज कल की भाँति जूता पहन कर भोजन करना अत्यन्त निकृष्ट कार्य है।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्वार्थमेव च ।।

मनु. ४।९२

ब्राह्म मुहूर्त अर्थात् प्रातः चार बजे जग कर धर्म और धन आदि तथा शरीर के रोगादि और उनके कारणों के विषय में विचार करना चाहिये। साथ ही वैदिक ज्ञान के तत्व तथा परमात्मा का भी ध्यान करना चाहिये।

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचारद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।।

मनु. ४।१५६

सदाचार से दीर्घ आयु, उत्तम सन्तान तथा अक्षय धन प्राप्त होता है। सदाचार अवगुणों तथा अधर्म के बुरे लक्षणों को नष्ट कर देता है।

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः ।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ।।

मनु. ४।१६१

जिस कर्म को करने से अन्तरात्मा को परितोष हो, प्रसन्नता एवं सन्तुष्टि प्राप्त हो, उसे प्रयत्न पूर्वक करना चाहिये और जो इसके विपरीत हो उसका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये।

नास्तिक्यं वेदनिन्दा च देवतानाम् च कुत्सनम्
।
द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च
वर्जयेत् ।।

मनु. ४।१६३

नास्तिकता, वेदनिन्दा, देवताओं के प्रति कुत्सित भाषण, शत्रुता, द्वेष, दम्भ, अभिमान, क्रोध, तैक्ष्ण्य अर्थात् स्वभाव में अनावश्यक उग्रता, कटुता एवं रूखापन, इन सब का परित्याग करे।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।

मनु. २।१२१

सुशील एवं विनम्र, बड़ों को प्रणाम करने वाले तथा वृद्धों की सेवा करने वाले की आयु, विद्या, कीर्ति और बल, ये चार सदा वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ।।

मनु. ६।४६

दृष्टि से भली प्रकार देख कर पद रखे, वस्त्र से छान कर शुद्ध जल

पिये, सत्य से पवित्र वचन बोले तथा मन पवित्र करके आचरण करे।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।।

मनु. ५।१॰९

जल से शरीर के अवयव, सत्याचरण से मन, विद्या एवं तप से जीवात्मा तथा ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है।

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।।

मनु. ५।१॰६

समस्त पवित्रताओं में धन की पवित्रता, सर्वश्रेष्ठ कही गयी है। जिसका धन पवित्र है वही वास्तव में पवित्र है, मिट्टी आदि साधनों और जल से की गयी पवित्रता वास्तविक पवित्रता नहीं होती ।

दुराचार

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ।।

मनु. ४।१५७

दुराचारी पुरुष संसार में सज्जनों के मध्य में निन्दित होने वाला, निरन्तर दुःख भोगने वाला, अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त होने वाला तथा अल्प आयु वाला होता है।

न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ।।

मनु. ४।१३४

पर स्त्री से सम्भोग करने के समान आयु क्षीण करने वाली अन्य कोई वस्तु संसार में नहीं है।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ।।

अथर्ववेद, ११।५।१९

ब्रह्मचर्य तथा तप से देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है। इन्द्र ने ब्रह्मचर्य के द्वारा ही देवों के लिये स्वर्ग, सुख तथा तेज उपलब्ध कराया है ।

इन्द्र को भोग विलासी के रूप में चित्रित करने वाले मूर्ख लोग इस मन्त्र को ध्यान पूर्वक पढ़ें ।

ब्रह्मचर्य से मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है, इस तथ्य को शतपथ ब्राह्मण में निम्न प्रकार कहा गया है ।

ब्रह्म वै मृत्यवे प्रजाः प्रायछत् ।
तस्मै ब्रह्मचारिणमेव न प्रायछत् ।।

शतपथ ब्राह्मण, ११। ३। ३। १

ब्रह्म ने प्रजाओं को मृत्यु को दे दिया किन्तु ब्रह्मचारी को नहीं दिया ।

वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं
रसान्स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव
हिंसनम्।।

मनुस्मति, २।१७७

ब्रह्मचारी को मदिरा, मांस, गन्ध, माला अर्थात् इत्र आदि श्राङ्गारिक वस्तुयें, रस अर्थात् हानिकारक पेय पदार्थ, स्त्री, सब प्रकार की खटाई एवं जीव हिंसा का त्याग कर देना चाहिये ।

ब्रह्मचर्यं परं शौचं ब्रह्मचर्यं परं तपः ।
केवलं ब्रह्मचर्येण प्राप्यते परमं पदम् ।।

महाभारत ,अध्याय, १४५

ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम पवित्रता है, ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम तप है, केवल ब्रह्मचर्य

से भी परम पद की प्राप्ति होती है ।

संकल्पाद् दर्शनाच्चैव
तद्युक्तवचनादपि।
संस्पर्शादथ संयोगात् पंचधा रक्षितं व्रतम्।।

महाभारत, अध्याय, १४५

काम विषयक संकल्प से, स्त्रियों के दर्शन से, कामोत्तेजक वाणी से, स्पर्श से तथा सम्भोग, इन पाँच प्रकार के कार्यों से दूर रहकर ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करना आवश्यक है।

ब्रह्मचर्यव्रतफलं लभेद् दारव्रती सदा ।
शौचमायुस्तथाऽऽरोग्यं लभ्यते ब्रह्मचारिभिः ।।

महाभारत ,अध्याय, १४५

जो सदा एकपत्नी व्रती रहता है, उसे ब्रह्मचारियों द्वारा प्राप्त किये जाने वाले फल- पवित्रता, आयु तथा आरोग्यता प्राप्त होते हैं।

प्राणायाम

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद:

प्राणायाम: ।

योग दर्शन, साधनपाद: ,४९

आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास तथा प्रश्वास दोनों की गति का विच्छेद अथवा रोकना प्राणायाम कहलाता है ।

प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ है-प्राण+आयामत्रप्राण का विस्तार, प्राण की पुष्टि । प्राणायाम से शरीर को निरोगिता तथा निर्मलता प्राप्त होती है और मन एवं इन्द्रियों का संयम होता है तथा स्वर में माधुर्य एवं शरीर में हलकापन आ जाता है, साथ ही बुद्धि तीव्र एवं सूक्ष्म हो जाती है ।

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृता: ।

व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं

तप: ।।

मनुस्मृतिए६। ७०

ब्राह्मण द्वारा व्याहृतियों एवं ओंकार के साथ विधिवत् तीन

प्राणायाम भी किया जानाए परम तप समझना चाहिये ।

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मला: ।

तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।।

मनुस्मृति ६। ७१

जिस प्रकार अग्नि में तपाने से (स्वर्णादि) धातुओं का मल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार प्राण के निग्रह अर्थात् प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं ।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्विषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ।।

मनुस्मृति ६। ७२

प्राणायम द्वारा दोषों कों दग्ध करे तथा धारणा अर्थात् परमात्मा में मन एवं चित्त लगाकर पापों का नाश करे, प्रत्याहार द्वारा लोभ मोह क्रोध आदि को दूर करे तथा भगवान् का ध्यान करके अनीश्वरवाद तथा नास्तिकता को दूर करे ।

प्राणायाम का फल बताते हुये योग दर्शन में कहा गया है–

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।

योग दर्शन, साधनपादः, ५२

प्राणायाम का अभ्यास करने पर आत्मा के ज्ञान को ढँकने वाला अज्ञान का आवरण उत्तरोत्तर क्षीण होता जाता है तथा ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है ।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः।।

गीताए४।२९

कुछ योगीजन अपान में प्राण का हवन करते हैं तथा कुछ अन्य प्राण में अपान का हवन करते हैं । प्राण तथा अपान दोनों की गति को

रोककर कुछ योगी प्राणायाम करने वाले हैं ।

श्री शङ्कराचार्य जी के अनुसार पूरक करना अपान में प्राण का हवन है तथा रेचक करना प्राण में अपान का हवन है । प्राण तथा अपान दोनों की गतियों को रोकना कुम्भक नामक प्राणायाम है।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिर:।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।

गीता, ६।१३

शरीर अर्थात् रीढ़ की हड्डी, शिर और गर्दन को (समं) एक सीध में रखते हुये अचल एवं स्थिर होकर तथा अपनी नासिका के अग्रभाग को देखकर अर्थात् उसमें धारणा करके, (दिश: च अनवलोकयन्) नेत्रों से इधर उधर दिशाओं को न देखता हुआ बैठे। श्री शङ्कराचार्य जी ने लिखा है कि यहाँ नासिका के अग्रभाग को देखने का विधान करना अभिमत नहीं है। केवल नेत्रों की दृष्टि को विषयों की ओर से रोककर नासिका के अग्रभाग की ओर स्थापन करना ही इष्ट है क्योंकि यदि नासिका के अग्रभाग को देखने का विधान माना जाय, तो फिर मन वहीं स्थित होगा, आत्मा में नहीं।

यम –नियम

यमान सेवेत सततं न नित्यं
नियमान्बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ।।

मनु. ४।२०४

'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः१ योगदर्शन. २।३०

(अहिंसा) समस्त प्राणियों के विरुद्ध हिंसा का त्याग, (सत्य) सत्य ही मानना, सत्य ही बोलना तथा सत्य का ही आचरण करना, (अस्तेय) मन, वचन तथा कर्म से चोरी का त्याग, (ब्रह्मचर्य) उपस्थेन्द्रिय का संयम, (अपरिग्रह) धन सम्पत्ति का अनावश्यक संग्रह न करना, यह पाँच यम हैं।

इन पाँच यमों का निरन्तर नित्य सेवन करना चाहिये, केवल

नियमों का ही नहीं। जो यमों का परित्याग करके केवल नियमों का पालन करते हैं, उनका पतन हो जाता है।

शौचसन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।।

योग दर्शन. २।३२

मन एवं शरीर आदि की पवित्रता, सन्तोष, तप अर्थात् सभी के कल्याण एवं सत्याचारण आदि श्रेष्ठ कार्यों के लिये कष्ट सहन करना, स्वाध्याय अर्थात् वेद शास्त्र आदि का अध्ययन करना तथा ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर की अनन्य भक्ति, ये पाँच नियम हैं।

योग

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्य सिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।

गीता.२।४८

हे अर्जुन! आसक्ति को त्यागकर सिद्धि तथा असिद्धि में समभाव रखते हुये योग में स्थित होकर कार्य करो। सफलता तथा असफलता में समबुद्धि तथा समत्वभाव ही योग कहा जाता है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।।

गीता. ६।७

अपने ऊपर संयम रखने वाले, शान्त अन्तःकरण वाले, अपने ज्ञान को केवल परमात्मा में समाहित करने वाले, शीत-उष्ण, सुख-दुःख तथा मान-अपमान में समान भाव रखने वाले-

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।।

गीता. ६।८

ज्ञान-विज्ञान से तृप्त अन्तःकरण वाले, विकार रहित इन्द्रियों पर

विजय प्राप्त करने वाले तथा मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण को एक समान समझने वाले योगी को युक्त कहा जाता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी
नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ।।

गीता, ६। १५

(एवं आत्मानं सदा युञ्जन्) उक्त प्रकार से आत्मा को सदा परमेश्वर में स्थिर करता हुआ (नियतमानसः नियतं संयतं मानसं मनो यस्य सः नियतमानस☺ संयमित मन है जिसका ऐसा योगी (निर्वाणपरमां निर्वाणं मोक्षः तत्परमा निष्ठा यस्याः शान्तेः सा निर्वाणपरमा तां निर्वाणपरमां) निर्वाण है परम निष्ठा, अन्तिम स्थिति जिसकी अर्थात् जिसकी अन्तिम स्थिति मोक्ष है तथा जो (मत्संस्थां मदधीनाम् अधिगच्छति प्राप्नोति) जो मेरे अधीन है, मुझमें स्थित है, उस शान्ति को प्राप्त करता है।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा
स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो
योगमात्मनः।।

गीता,६।१९

जिस प्रकार (निवातस्थो) वायुरहित स्थान में स्थित दीपक की ज्योति (न इङ्गते, न चलति) चलायमान नहीं होती (सा उपमा) वही उपमा (आत्मनः योगम् युञ्जतो) आत्मा के योग में लगे हुये अर्थात् अपने को परमात्मा के

साथ संयुक्त कर देने वाले (योगिनो यतचित्तस्य संयत अन्त:करणस्य) योगी के संयत चित्त की (स्मृता) कही गयी है।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषत: ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य
समन्तत: ।।

गीता, ६। २४

(संकल्पप्रभवान्, संकल्प: प्रभवो येषां कामानां ते संकल्पप्रभवा: कामा: तान् कामान्) संकल्प से उत्पन्न होने वाली समस्त कामनाओं को (अशेषत☺ पूर्णरूप से त्याग कर, संसार से निर्लिप्त होकर तथा (मनसा

एव) विवेकयुक्त मन से (इन्द्रियग्रामम् इन्द्रिय समुदायम्) इन्द्रियों के समूह का, (समन्तत: विनियम्य) सब ओर से नियमन करके अर्थात् समस्त इन्द्रियों को भली प्रकार संयमित करके–

शनै: शनैरुपरमेद्बुद्ध्या
धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मन:कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्
।।

गीता, ६। २५

(धृत्या धैर्येण गृहीतया धृतिगृहीतया धैर्येण युक्तया इत्यर्थ☺ धैर्य से धारण की हुई अर्थात् धैर्ययुक्त बुद्धि द्वारा

(शनैः शनैः उपरमेत्) धीरे धीरे अभ्यास करता हुआ उपरति को, शान्ति को प्राप्त करे तथा (आत्मसंस्थं, आत्मनिसंस्थितम् मनः कृत्वा) मन को परमात्मा में स्थित करके (न किञ्चिदपि चिन्तयेत्) परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का चिन्तन न करे ।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ।।

गीताए ६। २७

जिसका मन भली प्रकार शान्त है, जो पाप रहित है तथा जिसका रजोगुण शान्त हो गया है (ब्रह्मभूतम् ब्रह्मएव सर्वम् इति एवं निश्चयवन्तं) यह सब कुछ ब्रह्म ही है ऐसे निश्चय वाले योगी को (उत्तमम् सुखम् उपैति) उत्तम आनन्द प्राप्त होता है ।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ।।

गीता, ६। २८

(एवं सदा आत्मानं युञ्जन्) इस प्रकार अपने आत्मा को परमात्मा के साथ निरन्तर संयुक्त करता हुआ (विगत कल्मषः योगी) पापरहित योगी (सुखेन) बिना किसी कठिनाई के अनायास ही (ब्रह्म संस्पर्शम्) परब्रह्म के संस्पर्श का, ब्रह्म की प्राप्ति का (अत्यन्तं सुखम् अश्नुते) अत्यन्त,

असीम परमानन्द प्राप्त करता है।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।।

गीता. ६।४०

हे पार्थ! (योग की पूर्ण सिद्धि न होने पर भी) योग द्वारा भगवत्प्राप्ति का प्रयास करने वाले पुरुष का न तो इस लोक में और न परलोक में नाश होता है। हे तात्! कल्याणकारी कर्म करने वाला कोई भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे
योगभ्रष्टोऽभिजायते।।

गीता. ६।४१

योग भ्रष्ट पुरुष, पुण्य करने वालों के लोकों अर्थात् स्वर्गादि उत्तम लोकों को प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षों तक निवास करके फिर शुद्ध आचरण वाले ऐश्वर्यवान् पुरुषों के घर में जन्म लेते हैं।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।

गीता. ६।४५

प्रयत्न करने वाला योगी अत्यन्त प्रयत्न करके सभी पापों से मुक्त होकर, शुद्ध होकर, अनेक जन्मों में सिद्धि को प्राप्त करता हुआ अन्त में परमगति को प्राप्त होता है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

(योग युक्तात्मा) योग से युक्त आत्मा अर्थात् समाहित अन्तः करण वाला तथा (समं निर्विशेषं दर्शनं ज्ञानं यस्य स सर्वत्र समदर्शन☺ समस्त

भूतों को समत्व भाव से, समान रूप से देखने वाला योगी, (सर्वभूतस्थम् आत्मानम्) परमात्मा को समस्त भूतों में स्थित (च सर्वभूतानि आत्मनि) तथा समस्त भूतों को परमात्मा में स्थित (ईक्षते) देखता है।

यह स्पष्ट है कि जब तक कोई पुरुष परमात्मा को समस्त भूतों में, और समस्त भूतों को परमात्मा में स्थित नहीं देखेगा तब तक वह समदर्शी एवं योगी नहीं हो सकता।

मन

इन्द्रियाणां तु सर्वेषामीश्वरं मन उच्यते ।
प्रार्थनालक्षणं तच्च इन्द्रियं तु मनः स्मृतम् ।।

महाभारत, अध्याय, १४५

मन समस्त इन्द्रियों का स्वामी तथा नियन्त्रक कहलाता है। मन का लक्षण है प्रार्थना अर्थात् किसी वस्तु की इच्छा करना। मन को भी इन्द्रिय माना गया है।

मनः पूर्वागमा धर्मा अधर्माश्च न संशयः ।
मनसा बद्ध्यते चापि मुच्यते चापि मानवः ।।

निगृहीते भवेत् स्वर्गो विसृष्टे नरको ध्रुवः ।।

महाभारत, अध्याय, १४५

इसमें सन्देह नहीं कि धर्म और अधर्म पहले मन में ही आते हैं। मन के कारण ही मनुष्य बँधन में पड़ता है और मन के कारण ही मुक्त होता है। यदि मन को वश में कर लिया जाय तो स्वर्ग प्राप्त होता है और यदि उसे मनमानी करने दी जाय तो नरक की प्राप्ति अवश्यम्भावी है।

यतोयतो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।।

गीता. २।६०

यत्न करते हुये बुद्धिमान् पुरुष के मन को भी यह प्रमथन स्वाभाव

वाली इन्द्रियाँ बलपूर्वक हर लेती हैं।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।।

गीता, ६। २६

(चञ्चलम्) अत्यन्त चलायमान (अस्थिरम्) एवं कभी न स्थिर रहने वाला मन (यतः यतः निश्चरति) जिस जिस विषय में इधर उधर विचरण करता है, उस उस विषय से उसे बारम्बार रोककर (एतत् मनः आत्मनि एव वशं नयेत्) इस मन को आत्मा के ही वशीभूत करे, आत्मा में ही स्थिर करे, अन्य किसी ओर विचरण न करने दे ।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।

गीता. ६।३४

हे कृष्ण! मन अत्यन्त चञ्चल स्वभाव वाला दृढ़ एवं बलवान् है। उसको वश में करना मैं वायु को वश में करने के समान अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

गीता. ६।३५

हे महाबाहो कुन्ती पुत्र अर्जुन! निःसन्देह मन चञ्चल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु सतत् अभ्यास एवं वैराग्य से यह वश में किया जाता है।

दैवी संपदा

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।

गीता. १६।१

दैवी सम्पदा का वर्णन करते हुये भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की पूर्ण निर्मलता, तत्व ज्ञान के लिये ध्यान, योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति, सात्विक दान, मन का संयम तथा इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, वेद शास्त्रों का पठन पाठन तथा जप।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।

दया भूतेष्वलोलुत्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।

गीता. १६।२

मन, वाणी तथा शरीर से किसी को कष्ट न देना, प्राणिमात्र की हिंसा न करना, यथार्थ एवं प्रिय भाषण, अनावश्यक क्रोध न करना, त्याग, मन की शान्ति, प्राणियों के प्रति दया, परनिन्दा तथा झूठी चुगली न करना, सब प्रकार के लोभ एवं लालसा का त्याग, चित्त की कोमलता, लोक तथा शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा तथा व्यर्थ की चेष्टाओं एवं चपलता का अभाव।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत
।।

गीता. १६।३

तेज, क्षमा, धैर्य, शरीर एवं मन तथा बुद्धि की पवित्रता, धर्म, समाज एवं देश के प्रति द्रोह न करना तथा अहंकार का अभाव, ये सब दैवी सम्पदा से सम्पन्न पुरुष के लक्षण हैं।

आसुरी संपदा

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।।

गीता. १६।४

हे पार्थ ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, निष्ठुरता, क्रूरता एवं अज्ञान, ये सब आसुरी सम्पदा से युक्त पुरुष के लक्षण हैं।

आसुरी स्वभाव

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।।

गीता. १६।८

यह संसार ईश्वर के बिना ही अपने आप स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है। यह ईश्वर पर आधारित नहीं है, यह असत्य है तथा काम के भोगों के अतिरिक्त इसका और क्या प्रयोजन है अर्थात् यह संसार केवल काम वासना की तृप्ति तथा अन्य प्रकार के भोगों के लिये ही है।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ।।

गीता. १६।९

ऐसी विपरीत दृष्टि का आधार लेकर अपने आत्मा को नष्ट करने वाले, क्रूर कर्म करने वाले तथा सब का अहित करने वाले ये अल्प बुद्धि
लोग जगत् के नाश के लिये ही उत्पन्न होते हैं।

वेद में जिह्वें आत्महनः कहा गया है, उन्हीं को गीता में नष्टात्मानः कहा गया है।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः
।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।

गीता. १६।१०

दम्भ, अहंकार और मद से युक्त हुये लोग कभी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर मोहवश मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों से युक्त होकर संसार में व्यवहार करते हैं।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्।।

गीता. १६।१२

प्रेमामृत

सैकड़ों प्रकार की आशाओं के पाश से बँधे हुये, काम और क्रोध से ग्रस्त मनुष्य कामवासनाओं के भोग के लिये अन्याय पूर्ण ढंग से धन का सञ्चय करने की चेष्टा करते हैं।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।।

गीता. १६।१६

अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले, मोह रूप जाल में फंसे हुये तथा विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त हुये, ऐसे लोग अत्यन्त अपवित्र नरक में गिरते हैं।

<u>विद्या</u>

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः
।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।

चाणक्यनीति. ३।८, ८।२१

हितोपदेश

सुन्दरता एवं युवावस्था से युक्त तथा बड़े कुल में जन्म लेने पर भी विद्याहीन पुरुष गन्ध रहित पलाश के पुष्प के समान शोभा नहीं पाते।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।

हितोपदेश

विद्या विनय अर्थात् विनम्रता देती है, विनम्रता से योग्यता प्राप्त होती है, योग्यता से धन प्राप्त होता है, धन से धार्मिक कार्य किये जा सकते हैं और धर्म से सुख प्राप्त होता है।

यह महत्वपूर्ण है कि केवल धन से सुख प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत् धन से धर्म का आचरण करने पर, श्रेष्ठ कार्य करने पर सुख प्राप्त होता है।

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः ।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति सत्यसमं सुखम् ।।

सुभाषित

विद्या के समान कोई चक्षु नहीं है, सत्य के समान कोई तप नहीं है, राग अर्थात् मोह एवं आसक्ति के समान कोई दुःख नहीं है तथा त्याग के समान कोई सुख नहीं है।

न चौर हार्यम् न च राज हार्यम्,
न भ्रातृ भाज्यम् न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं,

विद्याधनं सर्व धनं प्रधानम् ।।

सुभाषित

न चोर इसको चुरा सकते हैं, न राजा इसको छीन सकता है,न भाई इसको बाँट सकता है और न इसमें किसी प्रकार का भार है। व्यय करने पर यह नित्य ही वृद्धि को प्राप्त होता है, वास्तव में विद्या ही सर्वश्रेष्ठ धन है।

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते,

कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम् ।

लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षुकीर्तिं,

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।

सुभाषित

माता की तरह रक्षा करती है, पिता की तरह कल्याणकारी कार्य में लगाती है, पत्नी की तरह थकावट को दूर करके आनन्द देती है, लक्ष्मी को बढ़ाती है और यश को चारों दिशाओं में फैलाती है। कल्पवृक्ष के समान विद्या क्या क्या सिद्ध नहीं करती ६

सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम् ।

सुखार्थी वा त्यजेत्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।।

चाणक्य नीति. १०।३

सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ और विद्या चाहने वाले को सुख कहाँ? अतः सुख की इच्छा करने वाला विद्या छोड़ दे तथा विद्या की इच्छा करने वाला सुख छोड़ दे।

विद्वत्वञ्च नृपत्वञ्च नैव तुल्यं कदाचन ।

स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।।

सुभाषित

विद्वता और राज वैभव इन दोनों की तुलना कदापि नहीं हो सकती, राजा तो केवल अपने देश में ही सम्मानित होता है किन्तु विद्वान् का सम्मान तो सर्वत्र होता है।

ताराणां भूषणं चन्द्रो नारीणां भूषणं पतिः ।

पृथिव्याः भूषणं राजा विद्या सर्वस्य भूषणं ।।

सुभाषित

तारागणों का आभूषण चन्द्रमा, स्त्री का आभूषण उसका पति और पृथ्वी का आभूषण राजा होता है किन्तु विद्या तो सभी का आभूषण होती है।

सा विद्या या विमुक्तये ।।

सुभाषित

वास्तविक विद्या वही है जिससे मुक्ति हो।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,

विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता,
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः।।

भर्तृहरि नीतिशतक. १६

विद्या ही मनुष्य का सबसे बड़ा सौन्दर्य है, विद्या मनुष्य का अत्यन्त गुप्त धन है, विद्या भोग्य पदार्थ, यश और सुख देने वाली है, विद्या

गुरुओं की भी गुरु है क्योंकि गुरु भी विद्या से ही ज्ञान प्राप्त करते हैं, विदेश यात्रा में विद्या कुटुम्बी जनों के समान सहायक होती है, विद्या ही सबसे बड़ी देवता है, राजाओं में (राजसभाओं) में विद्या का ही आदर सम्मान होता है, धन का नहीं, विद्या विहीन मनुष्य पशु के तुल्य है।

अग्निहोत्र

अग्नये हूयते यस्मिन् तद् अग्निहोत्रम् ।

जिस कर्म में अग्नि के लिये होम किया जाता है, आहुति दी जाती है, उसे अग्निहोत्र कहते हैं।

श्रौत कर्मों में सबसे सूक्ष्म अग्निहोत्र है, जिसे यावज्जीवन नित्य प्रति करने का विधान है।

यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति। शतपथ ब्राह्मण. १२।४।१।१

पुरुष को अपने जीवन काल में स्वस्थ रहते हुये नित्यप्रति अग्निहोत्र करना चाहिये।

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।

सर्वथा वर्तते यज्ञं इतीयं वैदिकी श्रुतिः।।

मनु. २।१५

(उदिते) सूर्योदय के पश्चात् (अनुदिते) सूर्योदय के पूर्व किन्तु नक्षत्रों के रहते हुये, (समयाध्युषिते) नक्षत्रों के अस्त हो जाने के पश्चात् तथा सूर्योदय के पूर्व, इन तीन कालों में प्रातःकालीन अग्नि होत्र तथा सूर्यास्त के पश्चात् सायंकालीन अग्निहोत्र किया जाना वेदानुसार है।

नौर्हवा एषा स्वग्र्या यदग्निहोत्रम् ।

शतपथ. १।३।३।१५

यह जो अग्निहोत्र है, वह संसार सागर से पार करवाकर स्वर्ग को ले जानी वाली नाव है।

इसीलिये निर्देष दिया गया है कि '**स्वर्ग कामी यजेत्**।'

स्वर्ग की कामना करने वाला यज्ञ करे।

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः ।

मै. उप. ६।२६

स्वर्ग की कामना वाला अग्निहोत्र करे।

शथपथ ब्राह्मण. ११।३।१ में अग्निहोत्र के विषय में बताते हुये महर्षि याज्ञवल्क्य ने महाराज जनक से कहा कि दुग्ध की आहुति दी जानी चाहिये, यदि दुग्ध न हो तो व्रीहि (चावल) की आहुति दी जानी चाहिये, यदि वह भी न हो तो अन्य ओषधियों से आहुति दी जानी चाहिये, यदि ओषधियाँ न हों तो जंगल की ओषधियों से आहुति दी जानी चाहिये, यदि वह भी न हों तो वनस्पतियों अर्थात् वृक्षों के फलों से आहुति दी जानी चाहिये। जब महाराज जनक ने कहा कि यदि वह भी न

हो, तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि सत्य का श्रद्धा में होम करे।

(**तेज एव श्रद्धा सत्य आज्यम्**) श्रद्धा तेज अथवा अग्नि है, सत्य घृत है।

श्रद्धा में सत्य की आहुति दिया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सत्य के बिना श्रद्धा केवल निरर्थक अन्धभक्ति हो जाती है।

यज्ञ

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म । शतपथ ब्राह्मण, १।७।१।५

यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है ।

यज्ञ का शाब्दिक अर्थ है, देवपूजन, सङ्गतिकरण तथा दान।

देवपूजन- भगवान् की अनन्य भक्ति पूर्वक उपासना तथा विद्वानों का सम्मान और उनके द्वारा बताये हुये श्रेष्ठ मार्ग पर चलना।

सङ्गतिकरण- श्रेष्ठ लोगों की सङ्गति जिससे मनुष्य का जीवन पवित्र, सुखी एवं सम्पन्न होता है।

दान- पात्र व्यक्तियों को दान देना, उनकी सब प्रकार से सहायता करना। भूखे को भोजन देना, पीड़ित प्राणी को अभय देना तथा विद्यार्थियों को विद्या, विशेष रूप से ब्रह्म विद्या की शिक्षा देना सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है।

यज्ञ के फल का अत्यन्त सुन्दर एवं आलंकारिक वर्णन करते हुये

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि यज्ञ में दी गई आहुतियाँ सत्कार करती हुयी, प्रियवाणी बोलती हुयी तथा 'आइये आइये' ऐसा कहते हुये ब्रह्मलोक को ले जाती हैं।

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः,
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
प्रियां वाचमभिवन्दन्त्योऽर्चयन्त्य,
एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः।

मुण्डक. १।२।६

(एहि एहि इति) आओ आओ कहती हुयीं (सुवर्चसः आहुतयः) देदीप्यमान आहुतियाँ (प्रियाम् वाचम् अभिवदन्त्यः) प्रियवाणी बोलती हुयीं तथा (अर्चयन्त्यः) आदर सत्कार करती हुयीं (तम् यजमानम्) उस यजमान को (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों के साथ (वहन्ति) ले जाती हैं (और कहती हैं कि) (एषः वः) यह तुम्हारा (पुण्यः) पवित्र (सुकृतः) श्रेष्ठ कर्मों का फलरूप (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मलोक है।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

गीता. १८।५

यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्याग करने के योग्य नहीं है, यह तो आवश्यक कर्म हैं। यज्ञ, दान और तप विद्वानों को पवित्र करने वाले हैं।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।

गीता. ३।१०

प्रजापति ने सृष्टि की आदि में यज्ञ के सहित प्रजाओं को उत्पन्न करके कहा कि तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो, यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित भोग प्रदान करने वाला, तुम्हारी कामनाओं की पूर्ति

करने वाला हो।

देवान्भावयतानेन ते देवाः भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।

गीता.३।११

तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं की उन्नति करो और वे देवता तुम लोगों की उन्नति करें। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से परस्पर एक दूसरे की उन्नति करते हुये तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त हो।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।।

गीता. ३।१४

समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ वेद विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।

गीता. ३।१५

कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ और वेद को अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ जानो। इसीलिये सर्वव्यापी परमात्मा सदा यज्ञ में प्रतिष्ठित रहता है।

सुरा मत्स्याः पशोर्मांसं द्विजातीनां बलिस्तथा ।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे
नैतद्वेदेषु कथ्यते ।।

महाभारत शान्ति पर्व, २६५।९

मद्य, मत्स्य, पशु का मांस तथा द्विजातियों द्वारा बलि दिया जाना, इन बातों को धूर्तों ने ही यज्ञ में प्रवृत्त किया है, सम्मिलित किया है, वेद में इसका विधान नहीं है।

घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य
कामाः ।।

यजु. १२।४४

हे अग्नि देव ! यज्ञ में दी हुयी घृत की आहुतियों से आप अपने शरीर की वृद्धि कीजिये। यज्ञ करने वाले यजमान की कामनायें सत्य हों, पूर्ण हों।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।।

गीता. ४।२८

अहिंसा आदि तीक्ष्ण व्रतों से युक्त कुछ अन्य यत्नशील पुरुष, लोक सेवा में द्रव्य लगाने वाले, कुछ तप यज्ञ करने वाले, कुछ अष्टाङ्ग योग करने वाले तथा कुछ वेद शास्त्रों के अध्ययन रूपी स्वाध्याय यज्ञ करने वाले होते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि ओम् के जप यज्ञ को अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है।

महर्षीणां भृगुरहं
गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालय: ।।

गीता, १०। २५

महर्षियों में मैं भृगु हूँ, वाणियों में एकाक्षर ओंकार हूँ, यज्ञों में जप यज्ञ हूँ तथा पर्वतों में हिमालय हूँ ।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।।

गीता. १७।१३

शास्त्रविधि से हीन, अन्नदान से रहित, बिना दक्षिणा दिये हुये, वेद मन्त्रों से हीन श्रद्धा रहित यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

महायज्ञ

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतै: ।
महा यज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनु: ।।

मनुस्मृति, २। २८

स्वाध्याय, व्रत अर्थात् ब्रह्मचर्य आदि यम नियमों का पालन, अग्निहोत्र, वेदों का अध्ययन, दर्श पौर्णमास आदि यज्ञ, उत्तम सन्तान, महायज्ञ अर्थात् ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, बलि वैश्वदेव यज्ञ तथा नृयज्ञ अर्थात् अतिथि

सत्कार आदि पुरुष के शरीर को ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त करने योग्य बनाते हैं ।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।

होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।।

मनुस्मृति, ३। ७०

वेद शास्त्रों का अध्ययन अध्यापन ब्रह्मयज्ञ है, माता पिता तथा अन्य वृद्ध जनों को भोजन तथा सेवा सुश्रूषा आदि से सन्तुष्ट रखना पितृ यज्ञ है, अग्निहोत्र तथा अग्नि में देवताओं के लिये आहुति देना देव यज्ञ है, बलि वैश्व देव अर्थात् निर्धनों, अपाहिजों, कुष्ठ आदि के रोगियों, गौवों, कुत्तों, पक्षियों एवं चीटियों आदि को भोजन देना भूतयज्ञ है तथा अतिथि सत्कार नृयज्ञ है ।

ज्ञान

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत । क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।।

कठोपनिषद्. १।३।१४

उठो, जागो और श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर उनके द्वारा उस परब्रह्म को जानो, उसका ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञानी जन तत्वज्ञान के उस मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण धार के सदृश दुर्गम बताते हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।।

गीता. ४।३४

विनम्रता पूर्वक प्रणाम करके, भली प्रकार प्रश्न पूछकर तथा सेवा

करके तत्वदर्शी ज्ञानियों से ज्ञान प्राप्त करो। वे ज्ञानी तुम्हें ज्ञान का उपदेश करेंगे।

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ।।

मनु. ११।२४६

जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि अपने तेज से समीप आये हुये काष्ठ को शीघ्र ही भस्म कर देती है, उसी प्रकार वेदज्ञ पुरुष अपनी ज्ञानरूपी अग्नि से समस्त पाप को दग्ध कर देता है, नष्ट कर देता है।

आहारनिद्राभयसन्ततित्वं,
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
ज्ञानं हि तेषामधिकं विशिष्टं,
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।।

हितोपदेश

आहार, निद्रा, भय, सन्तान उत्पन्न करना, ये सब पशुओं एवं मनुष्यों में एक समान होते हैं, मनुष्यों में पशुओं की अपेक्षा केवल ज्ञान की ही विशेषता होती है। ज्ञान से हीन मनुष्य पशु के समान होता है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्पर:
संयतेन्द्रिय:।
ज्ञानं लब्ध्वा परां
शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

गीता, ४।३९

(तत्पर☺ भगवान् के प्रति समर्पित हुआ (संयतेन्द्रिय: श्रद्धावान् ज्ञानं लभते) जितेन्द्रिय श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान प्राप्त करता है तथा (ज्ञानं लब्ध्वा) ज्ञान को प्राप्त करके (अचिरेण परां शान्तिं अधिगच्छति) शीघ्र ही भगवत्प्राप्ति रूपी परम शान्ति को प्राप्त करता है।

इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि भगवत्प्राप्ति के लिये ज्ञान, कर्म एवं उपासना तीनों का समुच्चय आवश्यक है।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन
पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।

गीता. ५।१०

जो पुरुष समस्त कर्मों को परमात्मा के प्रति अर्पण करके तथा आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पाप से उसी प्रकार लिप्त नहीं होता, जैसे कमल का पत्ता जल में रहते हुये भी जल से लिप्त नहीं होता।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहितेरताः ।।

गीता. ५।२५

क्षीण हो गये हैं पाप जिनके, ऐसे समस्त प्राणियों के कल्याण में लगे हुये संशय रहित, परमात्मा के प्रति सब प्रकार से समर्पित ऋषि ब्रह्म को प्राप्त होते हैं, मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

सर्वभूतेषु येनैकं
भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्।।

गीता. १८।२०

जिस ज्ञान से पुरुष पृथक् पृथक् समस्त भूतों में एक अविनाशी परमात्मा को ही समभाव से स्थित देखता है उस ज्ञान को सात्विक कहते हैं।

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमय।

बृहदा. उप. १।३।२८

मुझे असत् से सत् की ओर ले चलिये, मुझे अज्ञान के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले चलिये, मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चलिये।

इसकी व्याख्या करते हुये स्वयं महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि जब वह कहता है 'असतो मा सद्गमय' तो यहाँ मृत्यु ही असत् है और अमृत सत् है। जब वह कहता है अन्धकार से ज्योति की ओर ले चलिये तब यहाँ

मृत्यु ही अन्धकार है और अमृत ज्योति है। जब वह कहता है मृत्यु से अमृत की ओर ले चलिये तो इसमें कोई छिपी हुयी बात नहीं है, तब वह अमृतत्व की प्रार्थना करता है।

अज्ञान

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः,
स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा,
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।।

मुण्डक उप. १।२।८, कठोपनिषद्. १।२।५

अविद्या में स्थित रहते हुये अर्थात् वैदिक ज्ञान से रहित होते हुये भी अपने आप को बुद्धिमान् और विद्वान् मानने वाले मूर्ख लोग चारों ओर भटकते हुये ठीक उसी प्रकार अज्ञान के अन्धकार में ठोकरें खाते फिरते हैं जैसे अन्धे मनुष्य के द्वारा ले जाये जाने वाले अन्धे।

भक्ति एवं उपासना

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते
।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

गीता, ९। २२

अनन्य भाव से चिन्तन करते हुये जो मेरी उपासना करते हैं उन, भक्तिभाव से मुझ में नित्य अभियुक्त होने वाले,

भली प्रकार जुड़ जाने वाले, भक्तों के योग तथा क्षेम को मैं स्वयं वहन करता हूँ ।

(अलब्धलाभो योग☺ अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग है तथा (प्राप्तस्य संरक्षणं क्षेम☺ प्राप्त वस्तु के संरक्षण का नाम क्षेम है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

गीता. १८। ४६

जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न हुये हैं तथा जिससे यह समस्त संसार व्याप्त है उस परमात्मा की अपने कर्मों के द्वारा अर्चना एवं उपासना करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

गीता. ९।२६

जो मेरे लिये भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल अथवा जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुष द्वारा भक्तिपूर्वक अर्पित की गयी वस्तु को मैं खाता हूँ, स्वीकार करता हूँ।

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ।।

पाण्डव गीता, ४६

जिनके हृदय में नीलकमल के समान सुन्दर भगवान् श्री कृष्ण विराजमान हैं, उनको सदैव लाभ होगा, उनकी जय होगी। उनकी पराजय कैसे हो सकती हैः

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ।।

श्वेताश्वतर उप. ६।६।२०

जब मनुष्य गण आकाश को चमड़े की भाँति लपेट सकेंगे तब परमपिता परमात्मा को जाने बिना भी उनके दुःख का अन्त हो सकेगा। तात्पर्य यह है कि परमात्मा को जाने बिना, उसकी कृपा प्राप्त किये बिना कभी दुःख का अन्त नहीं हो सकता।

श्रवणान्मननाच्चैव गीतिस्तुत्यर्चनादिभिः।
आराध्यं सदा ब्रह्म पुरुषेण हितैषिणा ।।

महाभारत, अनुशासन पर्व अध्याय,१२४

(हितैषिणा पुरुषेण) अपना हित चाहने वाले पुरुष द्वारा (श्रवणात् मननात् च एव गीतिस्तुति अर्चनादिभिः ब्रह्म सदा आराध्यम्) श्रवण ,मनन एवं गीति, स्तुति तथा अर्चना द्वारा सदैव ब्रह्म की आराधना की जानी चाहिये।

सदा मुक्तोऽपि बद्धोऽस्मि भक्तेषु स्नेहरज्जुभिः ।
अजितोऽपि जितोऽहं तैरवशोऽपि वशीकृतः ।।

आदि पुराण

सदा मुक्त हुआ भी मैं भक्तों की प्रेमरूपी डोरी से बँधा हुआ हूँ। अजित हुआ भी मैं उनके द्वारा जीता हुआ हूँ और किसी के वश न आने वाला होता हुआ भी उनके वश में हूँ।

नाऽहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेऽपि वा ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।।

आदि पुराण

हे नारद ! न तो मैं वैकुण्ठ में निवास करता हूँ और न ही योगियों
के हृदय में। मेरे भक्त जहाँ मेरा गान करते हैं मैं वहीं निवास करता हूँ।

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ।।

श्रीमद्भागवत. ९।४।६३

(सुदर्शम चक्र से व्याकुल हो शरणागत दुर्वासा ऋषि से विष्णु भगवान् कहते हैं-) 'हे द्विज! मैं पराधीन के समान भक्तों के वश में हूँ। भक्तजनों को प्रेम करने वाला मेरा हृदय मेरे श्रेष्ठ, सच्चरित्र भक्तों ने बाँध रखा है।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।

गीता. ८।२२

हे पार्थ ! वह परमात्मा जिसमें समस्त प्राणी स्थित हैं और जो समस्त संसार में व्याप्त है, अनन्य भक्ति द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य है।

तमेव शरणं गच्छ
सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि
शाश्वतम्।।

गीता, १८।६२

हे भारत! सर्वभाव से अर्थात् सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जाओ। उसकी कृपा से परम शान्ति तथा शाश्वत स्थान अर्थात् सनातन परम धाम को प्राप्त होगे।

भगवान् में इस प्रकार की श्रद्धा, आस्था तथा दृढ़ विश्वास उपासना का अभिन्न अंग है।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि
वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्ष स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ।।

अपवित्र अथवा पवित्र सभी अवस्थाओं में जो पुण्डरीकाक्ष भगवान् का स्मरण करता है, वह बाहर तथा अन्दर दोनों प्रकार से पवित्र हो जाता है।

दान

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।
कृतस्य कार्य स्मर चेह स्फातिं समावह ।।

अथर्ववेद. ३।२४।५

सौ हाथों से धन का संग्रह करो, हज़ार हाथों से दान करो। अपने कार्यक्षेत्र तथा कर्तव्य क्षेत्र का विस्तार करो।

यानीन्मान्युत्तमानीह वेदोक्तानि प्रशंससि ।
तेषां श्रेष्ठतमं दानमिति मे नात्र संशयः ।।

महाभारत, अध्याय, १२०।१७

महर्षि व्यास मैत्रेय से कहते हैं कि तुम जिन जिन वेदोक्त उत्तम कर्मों

की यहाँ प्रशंसा कर रहे हो, उन सब में दान ही श्रेष्ठतर है, इस विषय में मुझे संशय नहीं है।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्।।

मनु.४।२३३

जल, अन्न, गौ, भूमि, तिल, सोना, घी आदि समस्त वस्तुओं के दानों से ब्रह्मदान अर्थात् वैदिक ज्ञान का दान श्रेष्ठ है।

तप

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।।

गीता. १७।१६

मन की प्रसन्नता तथा शान्तभाव, व्यवहार में सौम्यता, मौन, आत्म संयम और अन्तःकरण की पवित्रता, इन सब को मानसिक तप कहा जाता है।

देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।

गीता. १७।१४

देवता, ब्राह्मण, गुरु और विद्वान् तथा ज्ञानी की पूजा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा, इन सब को शारीरिक तप कहा जाता है।

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः ।

तैत्तिरीय आरण्यक प्रपाठक १०, अनुवाक १०

ऋत अर्थात् भगवान् के अटल सत्य नियमों के अनुसार आचरण करना तप है, सत्य बोलना तथा सत्य का पालन करना तप है, मन एवं इन्द्रियों का संयम तप है तथा स्वाध्याय अर्थात् वेदादि शास्त्रों का अध्ययन एवं प्रणव का जप, तप है ।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च
यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

गीता. १७।१५

उद्वेग अर्थात् दूसरे के मन में क्रोध, उग्रता एवं सन्ताप को उत्पन्न न करने वाला, सत्य प्रिय और हितकारक बात

कहना तथा वेद शास्त्रों का पठन पाठन एवं परमेश्वर के नाम का जप, वाणी का तप कहलाता है।

सन्तोष

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ।।

मनु. ४।१२

सुख की इच्छा करने वाला व्यक्ति परम सन्तोष को धारण करके संयमित जीवन व्यतीत करे क्योंकि सन्तोष ही सुख का मूल है और उसके विपरीत अर्थात् असन्तोष दुःख का कारण है।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्तव्यः दाने तपसि पाठने ।।

चाणक्य नीति. ७।४

अपनी स्त्री, धन और भोजन, इन तीन बातों में सन्तोष करना चाहिये परन्तु दान करने, तपस्या करने तथा अध्ययन करने में कभी सन्तोष नहीं करना चाहिये।

सन्तोषामृत तृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च ।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ।।

चाणक्य नीति. ७। ३

सन्तोष रूपी अमृत से तृप्त पुरुष को जो सुख तथा शान्ति प्राप्त होती है वह धन के लिये इधर उधर दौड़ने वाले लोभियों को कभी प्राप्त नहीं होती।

धन

अर्थानामार्जने दुःखमार्जितानाम् तु रक्षणे।
नाशे दुःखं व्यये दुःखम् धिगर्थं दुःखभाजनम्।।

महाभारत अनु, पर्व. १४५

धन के उपार्जन में दुःख अर्थात् कष्ट होता है, उपार्जित किये हुये धन की रक्षा करने में भी दुःख होता है क्योंकि रक्षा करने का प्रयास करना पड़ता है। धन के नाश होने पर और उसे व्यय करने में भी दुःख होता है, इस प्रकार दुःख के कारण रूप धन को धिक्कार है।

शील

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ।।

चाणक्यनीति. १६।१७

मधुर भाषण से, प्रिय बात कहने से सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं, अतः प्रिय वचन ही बोलने चाहिये, भला वाणी में क्या दरिद्रता।

विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः ।
परलोके धनं धर्म शीलं सर्वत्र वै धनम् ।।

सुभाषित

विदेश में विद्या धन होती है, संकट में विवेक धन होता है, परलोक में धर्म धन होता है किन्तु शील, सज्जनता और विनम्र तथा मधुर स्वभाव, सर्वत्र धन होता है।

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सुविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ।।

चाणक्यनीति ३।१३

समर्थ के लिये बड़ा भार क्या है, व्यापारी के लिये दूरी क्या हैः श्रेष्ठ विद्वान् के लिये विदेश क्या है और मधुरभाषी के लिये पराया कौन हैः

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो,
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता ।
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ८॰

ऐश्वर्य की शोभा सज्जनता, शूरवीरता की शोभा वाणी का संयम, ज्ञान की शोभा शान्ति, वेद शास्त्रों के ज्ञाता की शोभा विनम्रता, धन की शोभा पात्र को दान देना तथा उचित कार्य में व्यय करना, तप की शोभा अक्रोध, समर्थ की शोभा क्षमा, धर्म की शोभा निश्छलता तथा सब गुणों की शोभा सुशीलता है, जो सबसे श्रेष्ठ आभूषण है।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्।।

विदुरनीति. २।७८

बाणों से किया गया घाव फिर भर जाता है, परशु (कुल्हाड़े) से काटा गया वन भी पुनः हरा हो जाता है परन्तु वाणी से कहे गये बीभत्स अर्थात् अत्यन्त चोट पहुँचाने वाले दुर्वचन से किया गया हृदय का घाव कभी नहीं भरता।

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ।।

विदुरनीति. ४।३४, मनु. ३।१०१

तृण का आसन, बैठने तथा सोने के लिये उचित स्थान, जल तथा सत्य युक्त मधुर वाणी, ये सब उत्तम पुरुषों के घरों में सदैव उपलब्ध रहते हैं।

गुण तथा अवगुण

तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम् ।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम्।।

विदुरनीति. ७।६९

तपस्वियों का बल तप है, वेदज्ञों का बल वैदिक ज्ञान है, दुष्टों का बल हिंसा है तथा गुणवानों का बल क्षमा है।

अति रूपेण वै सीता ह्यतिगर्वेण रावणः
।
अतिदानाद् बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत्।।

चाणक्य नीति. ३।६

अति रूपवती होने के कारण सीता हरी गयीं, अति गर्व के कारण रावण मारा गया और अति दानी होने के कारण राजा बलि बन्धन में पड़ गये। निश्चय ही अति का सर्वत्र त्याग किया जाना चाहिये, अति कहीं भी नहीं करनी चाहिये।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति,
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च,
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।।

विदुरनीति. ३।५३

प्रज्ञा- श्रेष्ठ तथा पवित्र बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रिय दमन, वेदशास्त्रों का ज्ञान, पराक्रम, मितभाषी होना, यथाशक्ति दान

करना और कृतज्ञता, ये आठ गुण पुरुष को प्रकाशित करते हैं, यशस्वी बनाते हैं।

दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितम्
शौर्यम्।
वित्तं त्यागनियुक्तं दुर्लभमेतच्चतुष्टयं
लोके ।।

हितोपदेश

प्रिय वचन सहित दान, अभिमान रहित ज्ञान, क्षमा सहित वीरता तथा दान में प्रयोग किया गया धन, ये चार संसार में दुर्लभ हैं।

आमरणान्ताः प्रणयाः कोपास्तत्क्षणभङ्गुराः ।
परित्यागश्च निःसंगा भवन्ति हि महात्मनाम्।।

हितोपदेश

महात्माओं का प्रेम मरणपर्यन्त, क्रोध क्षणिक और परित्याग तथा
दान स्वार्थरहित हुआ करते हैं।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ५२

विपत्ति में धैर्य, समृद्धि में क्षमाशीलता, सभा में वाक्चातुर्य, युद्ध में पराक्रम, यश प्राप्त करने में अभिरुचि, वेद शास्त्रों के अध्ययन का व्यसन, ये छः गुण महापुरुषों में स्वाभाविक रूप से होते हैं।

श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसंगराः ।
स्वैरर्थैः परिसन्तुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः।।

महाभारत, अनुशासन पर्व, १४४।३५

जो शास्त्रज्ञ, दयालु, पवित्र, सत्यप्रतिज्ञ और अपने ही धन से सन्तुष्ट होने वाले होते हैं, वे स्वर्गलोक में जाते हैं।

अहिंसा सत्यवचनमक्रोधः क्षान्तिरार्जवम् ।
गुरूणां नित्यशुश्रूषा वृद्धानामपि पूजनम् ।।
शौचादकार्यसंत्यागः सदा पथ्यस्य भोजनम् ।
एवमादिगुणं वृत्तं नराणां दीर्घजीविनाम् ।।

महाभारत, अध्याय, १४५

अहिंसा, सत्य भाषण, अक्रोध, क्षमा, सरलता, गुरु जनों की नित्य सेवा, वृद्धों का आदर सत्कार, पवित्रता का ध्यान रखकर न करने योग्य कर्मों का त्याग, सुपथ्य तथा स्वास्थ्यप्रद भोजन करना आदि गुणों वाला आचरण दीर्घजीवी पुरुषों का होता है।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति
किं पातकैः,

सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं निजैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः,
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ४४

यदि लोभ हो तो अन्य अवगुणों की क्या आवश्यकता, यदि पिशुनता अर्थात् झूठी चुगली खाने का दोष हो तो अन्य पापों की क्या आवश्यकता, यदि सत्य बोलने का गुण है तो अन्य किसी तप की क्या आवश्यकता, यदि मन पवित्र है तो किसी तीर्थ की क्या आवश्यकता, यदि सज्जनता है तो अपने किसी सम्बन्धी की क्या आवश्यकता, जिसका यश हो उसे आभूषणों की क्या आवश्यकता, यदि श्रेष्ठ विद्या हो तो धन की क्या आवश्यकता और यदि अपयश हो तो मृत्यु की क्या आवश्यकता?

कलहान्तानि हर्म्याणि कुवाक्यान्तं च सौहृदम् ।
कुराजान्तानि राष्ट्राणि कुकर्मान्तं यशो नृणाम्।।

पञ्चतन्त्र

पारिवारिक कलह से घरों का नाश हो जाता है, बुरी बात बोलने से प्रेम नष्ट हो जाता है, कुराज्य अर्थात् कुशासन

से राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं तथा कुकर्म से व्यक्तियों के यश का नाश हो जाता है।

दोष

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः ।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ८७

प्रेमामृत ९५

आलस्य मनुष्यों के शरीर में रहने वाला सबसे बड़ा शत्रु है। उद्यम, जिसे करने वाला मनुष्य कभी कष्ट नहीं पाता, के समान अन्य कोई बन्धु नहीं है।

षड् दोषा पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ।।

विदुरनीति. १।८३

सुख की कामना करने वाले पुरुष को इन छः दोषों का परित्याग कर देना चाहिये, आवश्यकता से अधिक निद्रा, अर्धनिद्रा की अवस्था, भय, क्रोध, आलस्य तथा धीरे धीरे कार्य करना।

विवेक तथा बुद्धि

शिरःशार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं,
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि
जलधिम् ।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ।।

भर्तृहरि नीतिशतक, १०

गंगा स्वर्ग से पशुपति के शिर पर गिरीं, उनके शिर से हिमालय के शिखर पर गिरीं, ऊँचे पर्वत शिखर से फिर पृथिवी पर गिरीं और अन्त में पृथिवी से जाकर समुद्र में गिर गयीं। इस प्रकार गंगा पद पद पर नीचे ही गिरती चली गयीं । विवेक भ्रष्ट लोगों का इसीके समान सैकड़ों प्रकार से पतन होता है।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

चाणक्यनीति १२।१४

जो परायी स्त्रियों को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढ़ेले के समान तथा समस्त प्राणियों को अपने ही समान देखता है, वही वास्तव

में पण्डित है।

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति।।

विदुरनीति. २।८१

देवगण जिस पुरुष को पराभव तथा अवनति देना चाहते हैं, उसकी बुद्धि को वह खींच लेते हैं, नष्ट कर देते हैं। बुद्धि से रहित हुआ वह व्यक्ति नीच कर्मों को ही देखता है अर्थात् उन्हीं को करता है।

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति
पशुपालवत् ।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति
तम्।।

विदुरनीति. ३।४१

देवगण डण्डा हाथ में लेकर चरवाहों के समान पुरुष की रक्षा नहीं करते, अपितु वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे सद्बुद्धि से युक्त कर देते हैं।

असम्भवं हेममृगस्य जन्म,
तथापि रामो लुलुभे मृगाय ।
प्रायः समापन्न विपत्तिकाले,
धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति।।

हितोपदेश

सोने के मृग का जन्म असम्भव है फिर भी राम मृग के लोभ में पड़ गये। आपत्ति सन्निकट होने पर प्रायः मनुष्यों की बुद्धि मलिन हो जाती है।

तृष्णा

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न
जीर्यति जीर्यतः ।
याऽसौ प्राणान्तको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः
सुखम्।।

महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय १४५

जो दुर्बुद्धि लोगों के द्वारा अत्यन्त कठिनता से त्याग किये जाने वाली है, जो मनुष्य के जीर्ण हो जाने पर भी जीर्ण नहीं होती, जो प्राणनाशक रोग के समान है, उस तृष्णा का त्याग कर देने वाले पुरुष को ही सुख प्राप्त होता है।

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम्
।
न तृष्णायाः परो व्याधिर्न च धर्मो
दयापरः ।।

चाणक्य नीति. ८।१३

शान्ति के समान कोई तप नहीं है, सन्तोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है, तृष्णा से बड़ी कोई व्याधि नहीं है और दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

नास्ति तृष्णासमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्
।
सर्वान् कामान् परित्यज्य ब्रह्मभूयाय कल्पते
।।

महाभारत, अध्याय, १४५

तृष्णा के समान कोई दुःख नहीं है, त्याग के समान कोई सुख नहीं है। समस्त कामनाओं का परित्याग करके मनुष्य ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है, ब्रह्म को प्राप्त करने के योग्य हो जाता है।

काम एवं क्रोध

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति
पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।

गीता. ३।३६

हे कृष्ण! किसके द्वारा प्रेरित होकर पुरुष इच्छा न रहते हुये भी पाप का इस प्रकार आचरण करता है कि मानो उससे कोई बल पूर्वक पाप करवा रहा हो।

काम एष क्रोध एष
रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।।

गीता. ३।३७

रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम है, यह क्रोध है, जो पुरुष को पाप में प्रवृत्त करता है। यह बहुत खाने वाला अर्थात् भोगों से कभी तृप्त न होने वाला महापापी है, इसको ही मनुष्य का शत्रु समझो।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।

गीता. ३।३९

हे अर्जुन ! कभी सन्तुष्ट न होने वाले नित्य वैरी इस कामरूप अग्नि से ज्ञानियों का ज्ञान आवृत्त हो जाता है, नष्ट हो जाता है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।।

गीता. ३।४३

हे महाबाहो ! इस प्रकार बुद्धि से पर अर्थात् श्रेष्ठ, सूक्ष्म एवं बलवान आत्मा को जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करकेए तुम अत्यन्त कठिनायी से जीते जाने वाले इस कामरूप शत्रु को मारो।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं
नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।

गीता. १६।२१

आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् उसे अधोगति में ले जाने वाले काम, क्रोध तथा लोभ रूपी नरक के तीन द्वार हैं। अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिये।

ध्यायतो विषयान्पुंसः
सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।

गीता. २।६२

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है और कामना के पूर्ण होने में विघ्न आने पर क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः
संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

गीता. २।६३

क्रोध से संमोह अर्थात् अत्यन्त अविवेक उत्पन्न होता है, संमोह से स्मृति का, विवेक का नाश होता है। स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि का नाश हो जाने से पुरुष का पतन होता है, नाश होता है।

क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधोमितमुखो रिपुः ।
क्रोधोऽसि महातीक्ष्णः सर्वं क्रोधोऽपकर्षति ।।

वामन पुराण

क्रोध प्राणनाशक शत्रु है, क्रोध अपरिमित मुख वाला वैरी है, क्रोध बड़ी तेज धार वाली तलवार है, क्रोध सब कुछ हर लेता है, नष्ट कर देता है।

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी ।
विद्या कामदुहा धेनुः सन्तोषा नन्दनं वनं ।।

चाणक्य नीति. ८।१४

क्रोध यमराज के समान है, तृष्णा वैतरणी नदी के समान है, विद्या कामधेनु के समान है तथा सन्तोष इन्द्र के नन्दन वन के समान सुख देने वाला है।

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति क्रोधसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम् ।।

चाणक्य नीति. ५।१२

काम वासना (स्त्री संभोग की इच्छा) के समान कोई रोग नहीं है, मोह के समान कोई शत्रु नहीं है, क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं है तथा
ज्ञान के समान कोई सुख नहीं है ।

तपते यतते चैव यच्च दानं प्रयच्छति ।
क्रोधेन सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत् ।।

वामन पुराण

मनुष्य जो तप, संयम तथा दान आदि करता है, उस सब को क्रोध हर लेता है, नष्ट कर देता है अतएव क्रोध को त्याग देना चाहिये।

माता-पिता

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय
आश्रमाः।
त एव ही त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः।।

मनु. २।२३॰

माता पिता और आचार्य ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं तथा ये ही तीनों अग्नियाँ हैं।

यन्मातापितरौ क्लेशं सहते संभवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्त्या कर्तुं वर्षशतैरपि ।।

मनु. २।२२७

बच्चे के जन्म और पालन पोषण में माता-पिता जो क्लेश सहन करते हैं उसका प्रत्युपकार, उसकी प्रतिपूर्ति सौ वर्ष तक उनकी सेवा करने से भी नहीं की जा सकती।

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ।।

मनु. २।२२८

माता, पिता तथा आचार्य इन तीनों की नित्य सेवा सुश्रूषा करनी चाहिये। इन तीनों को प्रसन्न करने से ही समस्त तप सम्पूर्ण हो जाते हैं।

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परं तप उच्यते ।
न तैभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्।।

मनु. २।२२९

इन तीनों की सेवा को परम तप कहा जाता है। इनकी आज्ञा के बिना, इनकी इच्छा के विपरीत कोई कार्य नहीं करना चाहिये।

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते तत्र आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः।।

मनु.२।२३४

जिसने इन तीनों का आदर सम्मान किया, उसने समस्त धर्मों का पालन कर लिया और जिसने इनका अनादर किया उसकी समस्त क्रियायें निष्फल होती हैं।

दुर्भाग्य है कि आज हम इस शिक्षा को छोड़कर इसके ठीक विपरीत मार्ग पर चल रहे हैं, जिसका अत्यन्त सजीव

चित्रण आध्यात्म रामायण के निम्नाङ्कित श्लोक में किया गया है।

देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः ।
मातापितृकृतद्वेषाः स्त्रीदेवा कामकिङ्कराः ।।

अ.रामा. महात्म्य .११

यह लोग शरीर में आत्मबुद्धि वाले अर्थात् शरीर को ही आत्मा समझने वाले, मूर्ख, नास्तिक तथा पशुओं के समान बुद्धि वाले, माता पिता से द्वेष करने वाले और काम वासना के दास होकर स्त्री को ही देवता

समझने वाले हैं।

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्त्रितयम् हितम् ।
कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः ।।

हितोपदेश

माता, पिता और मित्र ये तीनों स्वभाव से ही हितकारी होते हैं। अन्य
लोग तो अपने कार्यों की सिद्धि के लिये ही, अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये ही हितचिन्तक बन जाते हैं।

पुत्र

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ।।

मनु. ९।१३८

(पुन्नाम्नः नरकात् त्रायते इति पुत्रः) पुम् नामक नरक (एवं वृद्धावस्था तथा अन्य कारणों से उत्पन्न दुःख) से पुत्र अपने माता पिता की रक्षा करता है, अतएव स्वयं प्रजापति ने ही उसे पुत्र कहा है।

लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।।

चाणक्य नीति. ३।१८

पाँच वर्ष की अवस्था तक पुत्र का प्रेम से लालन पालन करना चाहिये उसके बाद दश वर्ष तक अर्थात् पाँच वर्ष से पंद्रह वर्ष की अवस्था तक उसे उचित मार्ग पर चलाने के लिये आवश्यकतानुसार दण्ड देना चाहिये
किन्तु जब वह सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त कर ले, तो उससे मित्र के समान व्यवहार करना चाहिये।

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ।।

चाणक्य नीति. ३।१५

आग से जलते हुये एक ही सूखे वृक्ष से समस्त वन उसी प्रकार जल जाता है, जैसे एक ही कुपुत्र से सम्पूर्ण कुल नष्ट हो जाता है।

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खाः शतान्यपि ।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च।

सुभाषित

सैकड़ों मूर्ख पुत्रों की अपेक्षा एक गुणवान् पुत्र होना श्रेष्ठ है। एक चन्द्रमा अकेला ही अन्धकार को नष्ट कर देता है, जब कि असंख्य तारागण भी रात्रि के अन्धकार को दूर नहीं कर पाते।

जीवन

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ।।

मनु. ३।११८

जो पुरुष अपने आश्रितों तथा भूखे व्यक्तियों को भोजन न देकर केवल स्वयं अकेला ही भोजन करता है वह अन्न को नहीं बल्कि पाप को ही खाता है। यज्ञ से बचा हुआ अन्न ही सत्पुरुषों का भोजन कहा गया है।

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ।।

सुभाषित

जिसके घर में माँ न हो और जिसकी स्त्री कटुवचन बोलने वाली हो उसे तो वन में ही चला जाना चाहिये क्योंकि उसके लिये जैसा वन वैसा घर ।

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
सुखदुःखे मनुष्याणां चक्रवत् परिवर्ततः ।।

महाभारत

सुख के उपरान्त दुःख मिलता है और दुःख के उपरान्त सुख। मनुष्यों

में सुख और दुःख चक्र के समान निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।।

गीता. १८।१४

कर्मों की सिद्धि में इन पाँच कारणों का योगदान होता है, प्रथम-
अधिष्ठान अर्थात् कार्य करने वाले का आधार, द्वितीय- कर्ता के गुण, तृतीय- उसे प्राप्त होने वाले विविध प्रकार के उपकरण, साधन एवं सहायता, चतुर्थ- कर्ता द्वारा कर्मों के सम्पादन के लिये किये गये भिन्न भिन्न प्रकार के प्रयत्न तथा पाँचवा- उसका भाग्य। इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य की सफलता में भाग्य का पाँचवा स्थान होता है, प्रथम नहीं ।

शरीरं च नवच्छिद्रं व्याधिग्रस्तं कलेवरम् ।
औषधी जाह्नवी तोयं वैद्यो नारायणो हरिः ।।

पाण्डव गीता, ७५

(नवच्छिद्रं) नौ द्वारों से युक्त यह शरीर व्याधियों से ग्रस्त होने वाला है, इसके लिये गङ्गाजल ही औषध है और भगवान् विष्णु ही सर्वश्रेष्ठ वैद्य हैं।

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम्
।

लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणमेव वैरिणो जगति ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ५०

संसार में हिरण, मछली और सज्जन- ये तीनों बिना किसी को
सताये हुये क्रमशः घास, जल और सन्तोष से ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं परन्तु फिर भी शिकारी, धीवर और चुगलखोर दुष्ट बिना कारण ही इनके शत्रु बने रहते हैं।

आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः ।
स चेन्निरर्थकं नीतः का नु हानिस्ततो धिका ।।

सुभाषित
प्रेमामृत १.५

जीवन का एक क्षण भी कोटि स्वर्ण मुद्रा देने पर प्राप्त नहीं हो सकता, अतः यदि वह निरर्थक बातों में नष्ट हो जाय तो उससे अधिक हानि और क्या होगी।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तवः ।
तथा ग्रहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमः।।

मनु. ३।७७

जिस प्रकार वायु के आश्रय से समस्त प्राणी जीवित रहते हैं उसी प्रकार ग्रहस्थ आश्रम के आश्रय से अन्य सभी आश्रमों का निर्वाह होता है।

गते शोको न कर्तव्यः भविष्यन्नैव चिन्तयेत् ।
वर्त्तमानेन कालेन वर्त्तयन्ति विचक्षणाः ।। हितोपदेश

बीती हुयी बात का शोक नहीं करना चाहिये तथा भविष्य की भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। विद्वान् पुरुष वर्तमान की परिस्थितियों के अनुसार कार्य एवं व्यवहार करते हैं।

यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ।।

हितोपदेश

यौवन, धन सम्पत्ति, स्वामित्व और अविवेक, इनमें से अलग अलग
एक भी, अनर्थ के लिये पर्याप्त होता है। जहाँ ये चारों एकत्र हों, वहाँ का
तो कहना ही क्याः

अर्थागमो नित्यमरोगिता च,
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या,
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।

विदुरनीति. १।८७

हे राजन् ! अर्थ अर्थात् धन सम्पत्ति की प्राप्ति, सदा स्वस्थ रहना, मधुर बोलने वाली प्रियपत्नी, आज्ञाकारी पुत्र तथा धन प्राप्त कराने वाली
विद्या, ये छः इस संसार के सुख हैं।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजनसंपर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. १६

दुर्गम पर्वतों में वन में रहने वाले लोगों के साथ घूमना अच्छा है परन्तु इन्द्र के भवनों में भी मूर्खों के साथ रहना अच्छा नहीं।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार।।

काव्य संग्रह

(कमल वन में मकरन्द का आस्वादन करने वाला भ्रमर, जब कमल बन्द होने लगा तो उसी में बन्द हो गया। तब वह विचार करने लगा) कि रात्रि का अन्त होगा, सुन्दर प्रभात होगा, सूर्य उदय होंगे और कमल की कलियाँ खिल जायेंगीं (तब मैं बाहर आ जाऊँगा) किन्तु इसी बीच एक हाथी ने आकर कमल को उखाड़ कर फेंक दिया और भ्रमर उसी में बन्द

रह गया। तात्पर्य यह है कि मनुष्य कुछ सोचता है, कुछ स्वप्न देखता है किन्तु दुर्भाग्यवश कभी कभी ठीक उसके विपरीत हो जाता है।

नीति

क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टः रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे ।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः ।।

नीतिसागर

क्षण में रुष्ट, क्षण में तुष्ट अर्थात् प्रसन्न और सन्तुष्टय इस प्रकार

प्रेमामृत १०७

जो क्षण क्षण में रुष्ट और तुष्ट होता है, उस चञ्चलचित्त वाले पुरुष की प्रसन्नता भी भयङ्कर होती है।

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।।

विदुरनीति. ५।१५

हे राजन्! इस संसार में लगातार मीठी मीठी बातें बनाने वाले और प्रिय बोलने वाले तो सुगमता से प्राप्त होते हैं परन्तु अप्रिय तथा हितकारी वचन कहने और सुनने वाले दोनों ही दुर्लभ होते हैं।

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाध्यस्तत्राल्पधीरपि ।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ।।

हितोपदेश

जहाँ विद्वान् लोग नहीं होते वहाँ अल्पबुद्धि वाला भी पण्डित के समान उसी प्रकार आदरणीय हो जाता है जैसे, जिस देश में वृक्ष नहीं होते वहाँ एरण्ड (रेड़) की भी वृक्षों में गणना होने लगती है।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः सः श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ३२

जिस मनुष्य के पास धन है, वही कुलीन, वही विद्वान्, वही शास्त्रज्ञ, वही गुणों का पारखी, वही वक्ता अर्थात् उत्तम भाषणकर्ता तथा वही दर्शनीय माना जाता है। संसार में सारे गुण स्वर्ण अर्थात् धन में ही निवास करते हैं।

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया
गतिर्भवति ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ३४

दान देना, स्वयं उपभोग करना तथा नष्ट हो जाना, धन की यही तीन गतियाँ होती हैं। जो न धन का दान देता है और न उपभोग करता है, उसके धन की तीसरी गति होती है अर्थात् उसका धन नष्ट हो जाता है।

विद्या विवादाय धनं मदाय,
शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतद्,
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।।

भवभूतेर्गुणरत्नान्

दुष्ट की विद्या विवाद के लिये, धन मद के लिये और शक्ति दूसरों
को कष्ट देने के लिये होती है किन्तु इसके विपरीत सज्जनों की विद्या ज्ञान के लिये, धन दान के लिये और शक्ति निर्बलों की रक्षा करने के लिये होती है।

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो
नरः ।
हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः ।।

चाणक्य नीति. ८।८

ज्ञान के अनुरूप क्रिया के बिना ज्ञान नष्ट हो जाता है, ज्ञान के बिना मनुष्य नष्ट हो जाता है, बिना सेनापति के सेना नष्ट हो जाती है तथा बिना पति के स्त्री नष्ट हो जाती है।

कोकिलानां स्वरो रूपं नारी रूपं पतिव्रतम् ।
विद्या रूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम् ।।

चाणक्य नीति. ३।९

कोयल का सौन्दर्य उसका स्वर है, स्त्री का सौन्दर्य उसका पतिव्रत धर्म है, कुरूप का सौन्दर्य विद्या है तथा तपस्वियों का सौन्दर्य क्षमा है।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषान्न समाचरेत् ।।

महाभारत

धर्म का सार सुनो और सुन कर इसे धारण करो, तदनुसार आचरण करो। जो व्यवहार अपने को बुरा लगे वह दूसरों के साथ मत करो।

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।

हितोपदेश

बुद्धिमान मनुष्यों का समय काव्य और शास्त्रों के अध्ययन अध्यापन द्वारा आनन्द पूर्वक व्यतीत होता है

जब कि मूर्खों का समय नाना प्रकार के दुर्व्यसनों, निद्रा अथवा लड़ाई झगड़े में व्यतीत होता है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ।।

चाणक्यनीति. १३।९

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, इन चार पुरुषार्थों में जिसने एक भी प्राप्त नहीं किया, उसका जन्म बकरी के गले में लटकने वाले स्तन के समान निरर्थक होता है।

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. २४

इस परिवर्तनशील संसार में कौन ऐसा है जिसका मृत्यु के पश्चात् जन्म नहीं होता किन्तु वास्तव में वही जन्मा है, उसी का जन्म सफल एवं

सार्थक है, जिसके जन्म लेने से सम्पूर्ण वंश उन्नति को प्राप्त होता है।

शक्यो वारयितुं जलेन् हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो,
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रैः प्रयोगैर्विषं,
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।।

भर्तृहरि नीतिशतक. १०

अग्नि को जल से शान्त किया जा सकता है, सूर्य के तीव्र ताप को छाते से रोका जा सकता है, मदमस्त हाथी को तीखे अंकुश से वश में किया जा सकता है, बैल और गधे को डण्डे से सीधा किया जा सकता है, रोगों का निवारण नाना प्रकार की औषधियों से किया जा सकता है तथा विष का उपचार विविध प्रकार के मन्त्रों से किया जा सकता है। शास्त्र में सभी रोगों की औषधियों का विधान है किन्तु मूर्खों की कोई औषधि नहीं है।

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्वला,

न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालाङ्कृता मूर्धजाः।

वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,

क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणं ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. १५

सुन्दर केयूर (बाजूबन्द), चन्द्रमा के समान चमकीले मोतियों के

हार, स्नान, चन्दनादि का लेप, पुष्प, श्रृङ्गार तथा सजाये हुये, संवारे हुये बाल, ये सब मनुष्य को विभूषित नहीं करते। वास्तव में शुद्ध एवं सुमधुर वाणी ही मनुष्य को अलंकृत करती

है। अन्य आभूषण तो कालक्रम से नष्ट हो जाते हैं परन्तु वाणीरूपी आभूषण सदैव रहने वाला वास्तविक आभूषण है।

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ।
मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय
स्वान्गुणान्,
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम्
।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ६८

तृष्णा को काट दो, क्षमा को धारण करो, अभिमान को नष्ट करो, पाप में प्रीति मत करो, सत्य बोलो, सज्जनों के मार्ग का अनुसरण करो, विद्वानों की सेवा करो, पूजनीय व्यक्तियों का आदर करो, शत्रुओं से भी नम्रता का व्यवहार करो, अपने गुणों की रक्षा करो और उनमें वृद्धि करो तथा दुःखियों पर दया करो, ये सब सत्पुरुषों के लक्षण हैं।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ७२

अधम श्रेणी के पुरुष विघ्नों के भय से किसी अच्छे कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करते, मध्यम श्रेणी के लोग कार्य को आरम्भ करके विघ्नों से विचलित होकर उसे बीच में ही

छोड़ देते हैं परन्तु उत्तम श्रेणी के पुरुष विघ्नों द्वारा बार बार प्रताड़ित किये जाने पर भी प्रारम्भ किय हुये कार्य को पूर्ण किये बिना नहीं छोड़ते।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ७४

नीति में निपुण लोग निन्दा करें अथवा प्रशंसा, धन सम्पत्ति इच्छानुसार पास आये अथवा चली जाये, मृत्यु आज ही हो जाये अथवा दीर्घकाल तक जीवित रहें, धीर पुरुष किसी भी दशा में न्यायसङ्गत मार्ग से एक भी पग इधर उधर नहीं हटते।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ।।

मनु. ४।१६.

जो कार्य दूसरे के वश में होता है वह सब दुःख देने वाला होता है और जो कार्य अपने वश में होता है वह सब सुख देने वाला होता है। संक्षेप में सुख और दुःख का यही लक्षण जानना चाहिये।

विप्राणां ज्ञानतो जैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ।।

मनु. २।१५५

ब्राह्मणों में ज्ञान से ज्येष्ठता होती है, क्षत्रियों में वीरता से, वैश्यों में धन सम्पत्ति से तथा शूद्रों में आयु से ज्येष्ठता होती है।

उद्योग एवं प्रयास

उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ।
एतानि यत्र वर्तन्ते तत्र देवः प्रसीदति ।।

सुभाषित

उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि और पराक्रम ये जहाँ होते हैं, वहीं भगवान् प्रसन्न होते हैं, वहीं पर भगवान् की कृपा होती है।

उद्योगिनं पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मीः,
दैवेन देयमिति का पुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषाः ।।

सुभाषित

पुरुषों में सिंह के समान उद्यमी पुरुष को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है, भाग्य से सब मिलता है, ऐसा केवल कायर ही कहते हैं। भाग्य की उपेक्षा करके अपनी पूरी शक्ति से पुरुषार्थ करो और प्रयत्न करने पर भी यदि कार्य सिद्ध न हो, तो देखो कि हमारे प्रयत्न में क्या कमी रह गयी।

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः ।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हतः ।
चरैवेति ।।

ऐतरेय ब्राह्मण, ३३.३ सप्तमपञ्चिकायां, ३।३।१

चलने वाले पुरुष की जाँघें सुगन्धित पुष्पों से युक्त वृक्ष के समान सुशोभित हो जाती हैं और उसका शरीर वृद्धि को प्राप्त होकर आरोग्य रूपी फल से युक्त हो जाता है। जिस प्रकार वृक्ष की शोभा उसके पुष्पों से होती है, उसी प्रकार चलने वाले पुरुष की शोभा उसकी हृष्ट पुष्ट जाँघों से होती है। उसके समस्त पाप चलने के प्रकृष्ट श्रम से थक कर सो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। चलते रहो, चलते रहो।

आस्ते भाग्यमासीनस्य ऊर्ध्वतिष्ठति तिष्ठतः ।
शेते निपद्यमानस्य चरतश्चरितो
भगः ।।

ऐतरेय ब्राह्मण, ३३.३ सप्तम पञ्चिकायां. ३।३।२

बैठे हुये का भाग्य बैठ जाता है, खड़े हुये का भाग्य खड़ा हो जाता है, सोये हुये का भाग्य भी सो जाता है और चलने वाले अर्थात् कर्म करने
वाले का भाग्य चलने लगता है, अच्छा होने लगता है।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु
द्वापरः ।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरंश्चरैवेति।।

ऐतरेय ब्राह्मण, ३३.३ सप्तम पञ्चिकायां. ३।३।३

सोते रहना ही कलियुग है, जग जाना ही द्वापर है, उठकर बैठ जाना, जागृत हो जाना त्रेता है और चलते हुये आगे बढ़कर कार्य करना सतयुग है। अतः चलते रहो, आगे बढ़ते रहो।

चरन् वै मधु विन्दति चरन्
स्वादुमुदुम्बरम् ।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते
चरंश्चरैवेति।।

ऐतरेय ब्राह्मण. ३३.३ सप्तम् पञ्चिकायां ३।३।४

इन्द्र ने बालक रोहित को समझाया कि पुरुष चलते हुये ही, परिश्रम करते हुये ही मधु को, सफलता को प्राप्त करता है और चलते हुये ही मधुर उदुम्बर आदि फलों को प्राप्त करता है। सूर्य के जगत् वन्दनीयत्व को देखो जो कभी आलस्य नहीं करता, सदैव अपना कर्तव्य करते हुये चलता रहता है। अतः तुम भी चलते रहो, चलते रहो।

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम् ।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम् ।।

वाल्मीकि रामायण किष्किन्धाकाण्ड, १।१२१

लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा, हे आर्य! उत्साह ही बलवान् होता है, उत्साह से बढ़कर कोई बल नहीं होता। उत्साही पुरुष के लिये संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

गच्छन् पिपीलिको याति योजनानि शतैरपि ।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ।।

सुभाषित

चलती हुयी चींटी धीरे धीरे सैकड़ों योजनों तक चली जाती है किन्तु न चलते हुये अर्थात् रुके हुये गरुड़ भी एक पद की दूरी तय नहीं कर सकते।

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।।

हितोपदेश

केवल मनोरथ से कार्य सिद्ध नहीं होते हैं प्रत्युत् उद्योग करने से ही सिद्ध होते हैं। सोये हुये सिंह के मुख में मृग स्वयं प्रवेश नहीं करते ।

पराक्रम

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने ।
विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ।।

सुभाषित

जंगल में शेर का न तो कोई संस्कार करता है और न राजतिलक। उसे तो अपने पराक्रम से अर्जित राज्य का स्वामित्व तथा पशुओं के राजा होने का अधिकार स्वयं ही प्राप्त हो जाता है ।

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्ततुरगाः,
निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि ।
रविर्गच्छत्यन्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः,
क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे।।

सुभाषित

सूर्य के रथ में केवल एक ही पहिया है, इसमें सर्प जैसी (कमज़ोर) रश्मियों से जुते हुये सात घोड़े हैं। आकाश में चलने वाले उनके रथ के मार्ग का कोई आधार भी नहीं है तथा सारथि केवल एक पैर वाला है, फिर भी सूर्य प्रतिदिन अपार आकाश को पार करता है। महान लोगों के कार्यों की सिद्धि उनके पराक्रम से होती है, साधनों से नहीं।

रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता-,
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ५२

हे मित्र पपीहे! एक क्षण सावधानचित्त होकर मेरी बात सुनो। आकाश में बादल तो बहुत से होते हैं परन्तु सब एक से नहीं होते। कुछ तो

वृष्टि से पृथिवी को भिगो देते हैं, सींच देते हैं और कुछ व्यर्थ ही गरज़ते रहते हैं, बरसते नहीं। इसलिये तुम जिस जिस को देखो उसके समक्ष दीन वचन मत बोलो, उससे मत माँगो।

कर्म

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

ईशावास्योपनिषद्.१, यजु. ४०।१

जगती में, सम्पूर्ण सृष्टि में जो कुछ भी चराचर पदार्थ हैं, वह सब ईश्वर से आच्छादित एवं व्याप्त हैं अर्थात् ईश्वर के हैं। उनका त्याग भाव से, अनासक्ति भाव से उपभोग करो। किसी के धन को, स्वत्व को अथवा वस्तु को मत छीनो, उसकी अभिलाषा, आकांक्षा अथवा लिप्सा मत करो।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

ईशावास्योपनिषद्.२, यजु. ४०।२

इस लोक में श्रेष्ठ कर्म करते हुये सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करो।

इस प्रकार अनासक्ति भाव से अपने कर्तव्यों का पालन करते हुये तुझ मनुष्य में कर्म लिप्त नहीं होते। जीवन का इससे भिन्न और कोई श्रेष्ठ मार्ग नहीं है।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ।।

गीता. ३।९

यज्ञ के लिये किये गये कर्मों के सिवाय अन्य कर्मों से मनुष्य कर्मों के बन्धन में फँसता है। अतः हे अर्जुन! आसक्ति

से रहित होकर यज्ञ के लिये, लोक कल्याण के लिये कर्म करो।

यदृच्छालाभ सन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।

गीता. ४।२२

बिना इच्छा किये हुये जो अपने आप प्राप्त हो, उसमें ही सदा सन्तुष्ट रहने वाला, ईर्ष्या रहित, हर्ष, शोक आदि द्वन्द्वों से सर्वथा मुक्त, सिद्धि एवं असिद्धि में सम भाव रखने वाला कर्मयोगी, कर्म करता हुआ भी कर्मों के बन्धन में नहीं बँधता।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ।।

चाणक्य नीति. ६।९

जीव स्वयं कर्म करता है और स्वयं ही उसका फल भोगता है। वह स्वयं ही इस भवसागर में फँसा रहता है और स्वयं ही प्रयास करके इससे मुक्त होता है, मोक्ष प्राप्त करता है।

जो जस करहि सो तस फल चाखा ।
कर्म प्रधान विश्व रचि राखा ।।

जो जैसा करता है वैसा ही फल भोगता है। भगवान् ने इस सृष्टि को कर्म प्रधान बनाया है।

इसीलिये प्रत्येक पुरुष को नित्य प्रति अपने किये हुये कर्मों की विवेचना करके आत्मोन्नति का उपाय करना चाहिये।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।

गीता. २।४७

तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में ही है, कर्म के फल में कभी नहीं। अतः केवल कर्मों के फल हेतु कर्म करने वाले मत बनो। कर्म न करने में भी तुम्हारी आसक्ति न हो।

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वार्थ का परित्याग करके फल की कामना के बिना सदैव कर्तव्य भावना से अपने कर्मों का सम्पादन करना चाहिये और कभी निष्क्रिय नहीं हो जाना चाहिये।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।।

गीता. ३।१९

इसलिये तुम आसक्ति से रहित होकर कर्तव्य भावना से कर्म करो। आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

गीता. ३।२१

श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो प्रमाण अथवा उदाहरण स्थापित करता है अर्थात् वह अपने आचरण से जिस कर्म को उचित तथा करने योग्य बताता है, उसी के अनुसार अन्य सभी लोग व्यवहार करने लगते हैं।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।।

गीता. ३।२५

हे भारत ! कर्म में आसक्त हुये अज्ञानीजन जिस प्रकार अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये निरन्तर कर्म करते हैं, उसी प्रकार विद्वानों को आसक्ति रहित होकर लोक संग्रह के लिये, लोक कल्याण के लिये निस्वार्थ भाव से सतत् कर्म करना चाहिये।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम् ।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्म कोटि शतैरपि ।।

गरुड़ पुराण, ५। ५७

अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है । सैकड़ों, करोड़ों जन्मों में भी फल का भोग किये बिना कर्मों का क्षय नहीं होता ।

सत्वादि गुण

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ।।

गीता. १८।४०

पृथिवी में अथवा द्युलोक में, मनुष्यों में अथवा देवताओं में कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीन गुणों से मुक्त हो।

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति ।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ।।

मनु. १२।३५

जिस कार्य को करने के पश्चात्, करते समय तथा करने की इच्छा प्रकट करने में लज्जा का अनुभव हो उस कार्य को विद्वान् लोग तमोगुण का लक्षण कहते हैं।

येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम्
।
न च शोचत्यसम्पत्तौ सद्विज्ञेयं तु
राजसम् ।।

मनु. १२।३६

अधिक सम्पत्ति न होने से बिना दुःखी हुये पुरुष जिस कर्म के द्वारा इस लोक में बहुत प्रसिद्धि की इच्छा करता है, उस कार्य को रजोगुण से युक्त समझना चाहिये।

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन्
।
येन तुष्यति चात्माऽस्य तत्सत्वगुणलक्षणम् ।।

मनु. १२।३७

जिस कर्म के द्वारा अन्य पुरुषों से ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हो,

जिस कर्म को करते हुये लज्जा का अनुभव न हो और जिस कर्म को करके पुरुष की अपनी आत्मा आनन्दित तथा तृप्त हो, उस कर्म को सत्व गुण का लक्षण समझना चाहिये।

तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ।।

मनुस्मृति १२। ३८

तमोगुण का लक्षण काम, रजोगुण का लक्षण अर्थ संग्रह तथा सत्वगुण का लक्षण धर्म है । ये उत्तरोत्तर एक दूसरे से श्रेष्ठ हैं अर्थात् तमोगुण से रजोगुण तथा रजोगुण से सत्वगुण श्रेष्ठ है।

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ।।

गीता. १४।५

हे अर्जुन! प्रकृति से उत्पन्न सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं।

सत्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादामोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ।।

गीता. १४।१७

सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से लोभ उत्पन्न होता हैं तथा तमोगुण से प्रमाद, मोह और अज्ञान उत्पन्न होते हैं।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।

विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस
उच्यते ।।

गीता. १८।२८

अयुक्त, अस्थिर चित्त वाला, शिक्षा से रहित, घमण्डी, दुष्ट, दूसरे की आजीविका को नष्ट करने वाला, शोक करने वाला, आलसी, दीर्घसूत्री अर्थात् अत्यन्त धीमे काम करने वाला कर्ता तामस कहलाता है।

परोपकार

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः,
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
धाराधरो वर्षति नात्महेतोः,
परोपकाराय सतां विभूतयः ।।

सुभाषित

नदियाँ स्वयं जल नहीं पीतीं, वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते तथा मेघ अपने लिये जल नहीं बरसाते। सज्जनों का ऐश्वर्य तथा सम्पत्ति तो परोपकार के लिये ही होती है।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्भूमिविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः,
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ६१

फल आने पर वृक्ष की डालियाँ झुक जाती हैं, नवीन जल से पूरित मेघ नीचे झुककर पृथिवी पर जल वर्षा करते हैं। इसी प्रकार सज्जन पुरुष ऐश्वर्य सम्पन्न होने पर विनम्र हो जाते हैं। वास्तव में विनम्र होना ही परोपकार करने वालों का स्वभाव होता है।

उपकारः परो धर्मः परार्थं कर्म नैपुणम् ।
पात्रे दानं परः कामः परो मोक्षो वितृष्णता।।

सुभाषित

उपकार परम धर्म है, दूसरों के लाभ के लिये कर्म करना ही कर्म की निपुणता है, श्रेष्ठता है। सत्पात्र को दान देना ही परम कार्य है और सांसारिक भोगों एवं धन सम्पत्ति आदि से वितृष्णा, उनके प्रति आकर्षण

का अभाव ही परम मुक्ति है।

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ६२

कानों की शोभा वेद शास्त्रादि के श्रवण से होती है, कुण्डल धारण करने से नहीं, हाथों की शोभा सुपात्रों को दान देने से होती है, कङ्गन पहनने से नहीं। करुणामय तथा दयालु पुरुषों का शरीर परोपकार से

सुशोभित होता है, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों के लेप से नहीं।

पद्माकरं दिनकरो विकची करोति,
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यार्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति,
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ६३

सूर्य बिना याचना किये ही कमल पुष्प को विकसित करता है, खिलाता है, चन्द्रमा बिना प्रार्थना के ही कुमुदों को प्रफुल्लित करता है तथा मेघ बिना माँगे ही जल बरसाता है। वास्तव में सज्जन बिना किसी अनुरोध के स्वयं ही दूसरों की भलाई करने के लिये कृत संकल्प रहते हैं।

ब्राह्मण

अनभ्यासेन वेदानां आचारस्य च वर्जनात्।
आलस्याद् अन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति।।

मनु. ५।४

वेद का अभ्यास न करने से, सदाचार का त्याग करने से, आलस्य से और अन्न दोष से मृत्यु ब्राह्मण को मारना चाहती है अर्थात् ब्राह्मण का पतन हो जाता है, नाश हो जाता है।

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत् विषादपि ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ।।

मनु. २।१६२

ब्राह्मण सम्मान से विष के समान नित्य उदासीनता रखे तथा अपमान की अमृत के समान आकाङ्क्षा रखे क्योंकि जो अपमान से डरता है और सदा सम्मान की इच्छा करता है, वह निकृष्ट एवं पतित आचरण करने वाले की भी प्रशंसा करेगा और असत्य एवं अधर्म को भी उचित बताने का प्रयास करेगा।

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ।।

मनु. २।१६८

जो द्विज वेद का अध्ययन न करके अन्यत्र श्रम करता है, वह अपने जीवन काल में ही पुत्र पौत्रादि सहित शीघ्र ही शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि द्विजों को अन्य विद्याओं के साथ साथ वेद अवश्य पढ़ना चाहिये।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।।

मनु. १।८८

ब्राह्मण के लिये पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना और लेना, ये छः कर्म हैं परन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इनमें से 'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः' दान लेना निम्न स्तर का कर्म है।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

मनु. १२।१०४

तप तथा विद्या ब्राह्मण के परम कल्याण के लिये, मोक्ष के लिये श्रेष्ठ

साधन हैं, वह तप से पापों को नष्ट करता है और ज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करता है।

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम विभ्रति ।।

मनु. २।१५७

काठ का हाथी, चमड़े का मृग तथा बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण, ये तीनों केवल नाम मात्र के ही होते हैं, वास्तविक नहीं।

प्रतिग्रहं समर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ।।

मनु. ४।१८६

दान लेने की सामर्थ्य होने पर भी ब्राह्मण दान के प्रति आसक्त न हो और दान ग्रहण न करे क्योंकि दान लेने से उसका ब्रह्मतेज शीघ्र ही शान्त हो जाता है, नष्ट हो जाता है।

ब्राह्मणः सर्वलोकानां महान्तो धर्मसेतवः ।
धनत्यागाभिरामाश्च वाक्संयमरताश्च ये ।।

महाभारत, अध्याय, १५१।४

ब्राह्मण समस्त जगत् की धर्म मर्यादा का संरक्षण करने वाले सेतु के समान हैं। वे धन का त्याग करके प्रसन्न होते हैं और वाणी का संयम रखते हैं।

रमणीयश्च भूतानां निधानं च
धृतव्रताः ।
प्रणेतारश्च लोकानां शास्त्राणां च यशस्विनः ।।

महाभारत, अध्याय, १५१।५

ब्राह्मण समस्त प्राणियों के लिये रमणीय उत्तम निधि, दृढ़ता पूर्वक व्रत का पालन करने वाले, लोक का नेतृत्व करने वाले, शास्त्रों के निर्माता, ज्ञाता एवं परम यशस्वी होते हैं।

ब्राह्मणे दारुणं नास्ति मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।।

महाभारत, अध्याय. २७।१२

ब्राह्मण में क्रूरता नहीं होती, ब्राह्मण को सब के प्रति मैत्रीभाव रखने वाला कहा जाता है।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च
।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।

गीता. १८।४२

अन्तःकरण की पवित्रता, मन एवं इन्द्रियों का निग्रह, उन्हें बुरे विचारों एवं कार्यों से रोकना, धर्मपालन के लिये कष्ट सहना, शरीर, भोजन एवं धन की पवित्रता, क्षमा करना,

स्वभाव की सरलता, किसी प्रकार की चालाकी आदि का अभाव, सांसारिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान, ईश्वर के प्रति श्रद्धा, भक्ति, ये सब ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।।

मनु. १०।६५

शूद्र अपने ज्ञान, गुण तथा कर्म के आधार पर ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है और इनके विपरीत होने पर ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त करता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य के विषय में भी जानना चाहिये।

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ।
वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु।।

मनु. १०।८०

ब्राह्मण का मुख्य कार्य वेदाभ्यास करना, क्षत्रिय का दूसरों की रक्षा करना और वैश्य का मुख्य कर्म व्यापार करना है।

पर्जन्य नाथा पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः ।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेद बान्धवाः।।

विदुरनीति. २।३८

मेध पशुओं के रक्षक होते हैं, राजा मन्त्रियों की सहायता से कार्य करते हैं, पति स्त्रियों के रक्षक एवं सहायक होते हैं तथा ब्राह्मण वेद की रक्षा करने वाले, वेद के भाई होते हैं।

सत्संगति

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्सङ्गतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्।।

भर्तृहरि नीतिशतक. १९

सत्सङ्गति बुद्धि की जड़ता को दूर करती है, वाणी में सत्य को सींचती है, सम्मान को बढ़ाती है, पाप को दूर करती है, चित्त को आह्लादित करती है और चारों दिशाओं में यश को फैलाती है। कहो, कौन सी अच्छायी है जो सज्जनों की सङ्गति से प्राप्त नहीं होती।

महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः ।
पद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ।।

सुभाषित

महापुरुषों की संगति किसके लिये उन्नति कारक नहीं होती ६ कमल के पत्ते पर पड़ा हुआ पानी मोती के समान शोभायमान होता है।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः
।
यदा किञ्चित् किञ्चित् बुधजनसकाशादवगतं,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे
व्यपगतः ।।

जब मेरे पास थोड़ा सा ज्ञान था, तब मैं हाथी की तरह मदान्ध

तथा घमण्ड में चूर था और मेरे मन में यह था कि मैं सर्वज्ञ हूँ परन्तु जब बुद्धिमानों के संसर्ग से मैने कुछ कुछ ज्ञान प्राप्त किया तब मेरी समझ में
आया कि मैं तो मूर्ख हूँ और मेरा गर्व ज्वर की तरह उतर गया।

यादृशैः संनिविशते यादृशांश्चोपसेवते ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः ।।

विदुरनीति. ४।१३

मनुष्य जिस प्रकार की सङ्गति में प्रवेश करता है, जैसे व्यक्तियों के साथ उठता बैठता है और जैसा बनना चाहता है वैसा ही बन जाता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य का अच्छा बुरा बनना उसकी स्वयं की इच्छा एवं सङ्गति पर निर्भर करता है।

<u>कामनायें</u>

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ।।

मनु. २।२

न तो कामनाओं का अधिक होना और न उनका पूर्ण अभाव ही उचित है क्योंकि कामनाओं से ही तो पुरुष वेदों का ज्ञान प्राप्त करता है तथा कामनाओं की पूर्ति के लिये ही वेद विहित कर्मों का सम्पादन करता है।

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्प सम्भवाः ।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृःताः ।।

मनु. २।३

कामना ही सारे संकल्पों का मूल है। यज्ञ भी संकल्प पर आधारित होते हैं। इसी प्रकार व्रत, यम नियम तथा सभी धार्मिक कृत्य संकल्प से ही उत्पन्न होने वाले हैं अर्थात् संकल्प पर ही आधारित होते हैं।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन
शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय
एवाऽभिवर्धते।।

मनुस्मति, २।९४

जिस प्रकार अग्नि में हवि अर्थात् घृत आदि डालने से वह और अधिक प्रदीप्त होता है ,उसी प्रकार कामनाओं के उपभोग से कामनायें शान्त नहीं होती बल्कि और अधिक बढ़ती हैं । इसीलिये इन्द्रियों का निग्रह आवश्यक है ।

अहंकार

ते अतिमानेनैव पराबभूवुः। तस्मान्नातिमन्येत।
पराभवस्य हैतन्मुखं यदातिमानः ।

शतपथ ब्राह्मण. ५।१।१।१।

वे असुर अत्यन्त अहंकार के कारण ही पराभव को प्राप्त हुये। अतः अहंकार नहीं करना चाहिये।

यह जो अहंकार है वह पराभव का मुख है अर्थात् अहंकार से ही पतन एवं पराभव प्रारम्भ होता है।

अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्।।

विदुरनीति. ५।१०

अत्यधिक अभिमान, बहुत बोलना, त्याग न करना, क्रोध, (आत्मविधित्सा) केवल आत्म पोषण अथवा अपने स्वार्थ की पूर्ति का प्रयास तथा मित्र द्रोह, इन छः कार्यों से मनुष्य पूर्ण आयु तक जीवित नहीं रहता।

लज्जां निहन्ति चापल्यं शोको धैर्यं जरा रुचम्
।
अहङ्कारो गुणानां तु
मूलमुक्खातयत्यलम् ।।

सुभाषित

चञ्चलता लज्जा को नष्ट कर देती है, शोक धैर्य को एवं वृद्धावस्था कान्ति को नष्ट कर देती है जब कि अहंकार तो गुणों के मूल को ही सर्वथा उखाड़ फेंकता है, नष्ट कर देता है।

अभिमानः श्रियं हन्ति पुरुषस्याल्पमेधसः ।

सुभाषित

अल्प बुद्धि वाले पुरुष का अभिमान उसकी शोभा और लक्ष्मी का नाश कर देता है।

मित्र

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्द्ध परार्द्धभिन्ना,
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ४९

जैसे दिन के पूर्वार्द्ध (दोपहर से पहले) की छाया पहले लम्बी और फिर क्रमशः छोटी होती चली जाती है तथा मध्याह्न की छाया पहले छोटी और फिर धीरे धीरे बड़ी होती चली जाती है, इसी प्रकार दुष्टों की मित्रता पहले अत्यन्त घनिष्ठ और फिर धीरे धीरे कम होती चली जाती है जब कि सज्जनों की मित्रता पहले कम और फिर धीरे धीरे घनिष्ठ होती जाती है।

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं च निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ।।

भर्तृहरि नीतिशतक, ६५

पाप करने से रोकता है, हितकारी कर्मों में लगाता है, मित्र की गुप्त बात को छिपाता है, उसके गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति आने पर साथ नहीं छोड़ता तथा आवश्यकता पड़ने पर धन आदि देता हैय अच्छे मित्र के ये सब लक्षण सन्तों द्वारा, विद्वानों द्वारा कहे जाते हैं।

१३॰ प्रेमामृत

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।

हितोपदेश

सामने तो प्रिय वचन बोलने वाले किन्तु पीठ पीछे काम बिगाड़ने वाले बनावटी मित्र को, मुख पर दूध लगे हुये किन्तु विष से भरे हुये घड़े के समान छोड़ देना चाहिये।

आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत् ।
वृद्धिकाले तु सम्प्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद्भवेत् ।।

हितोपदेश

आपत्ति के समय जो मित्र होता है, वही सच्चा मित्र है। उन्नति के समय तो दुर्जन भी मित्र बन जाते हैं।

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे
शत्रुसङ्कटे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ।।

हितोपदेश

उत्सव तथा प्रसन्नता के अवसर पर, आपत्ति पड़ने पर, दुर्भिक्ष के समय, शत्रु द्वारा संकट उत्पन्न किये जाने के

समय, राज दरबार में तथा श्मशान में जो सहायता के लिये साथ रहता है, वही बन्धु है।

संसार

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।

गीता. ७।४

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार, इन आठ प्रकार से विभक्त हुयी मेरी प्रकृति है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।

गीता. ७।५

हे महाबाहो! मेरी इस अपरा प्रकृति से भिन्न दूसरी परा अर्थात् चेतन प्रकृति को भी जानो, जिससे यह समस्त जगत् धारण किया जाता है।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।।

गीता. ७।६

ऐसा समझो कि समस्त प्राणी इन दोनों प्रकार की प्रकृतियों से उत्पन्न होने वाले हैं । मैं समस्त जगत् की उत्पत्ति तथा प्रलय करने वाला हूँ।

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।

गीता. ७।७

हे धनंजय! मेरे से भिन्न और कोई वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् मुझमें इस प्रकार पिरोया हुआ है जैसे कि माला के सूत्र में मणियाँ पिरोई रहती हैं।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा,
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-,

स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।।

गीता. ११।२९

भगवान् के दिव्य विराट् स्वरूप को देखकर अर्जुन ने कहा, जैसे पतङ्गे नष्ट होने के लिये प्रज्वलित ज्योति में अत्यन्त वेग से प्रवेश करते हैं

उसी प्रकार यह समस्त लोक अपने नाश के लिये आप के मुख में अत्यन्त वेग से युक्त होकर प्रवेश कर रहे हैं।

राज्ञ धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः

।

राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा

प्रजाः ।।

चाणक्य नीति. १३।८

राजा यदि धार्मिक हो तो प्रजा भी धार्मिक होती है, राजा यदि पापी हो तो प्रजा भी पाप करने वाली होती है, यदि राजा न पापी हो, न धार्मिक हो तो प्रजा भी वैसी ही होती है। जैसा राजा होता है, वैसी ही प्रजा होती है।

निग्रहानुग्रहैः सम्यग्यदा राजा प्रवर्तते

।

तदा भवति लोकस्य मर्यादा सुव्यवस्थिता ।।

महाभारत आरण्यक पर्व, अध्याय, १४९।३९

राजा जब उचित रूप से दुष्टों को दण्ड देता है और सज्जनों पर कृपा करता है तब लोक मर्यादा सुव्यवस्थित रहती है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।

गीता. ४।१३

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, ये चारों वर्ण गुण और कर्मों के विभाग के अनुसार मेरे द्वारा रचे गये हैं। इन सब की रचना करने वाला होने पर भी तुम मुझ अविनाशी को अकर्ता ही जानो।

भगवान् की विभूति

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं
नृषु ।।

गीता. ७।८

हे कौन्तेय ! जल में मैं रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ, समस्त वेदों में प्रणव अर्थात् ओङ्कार हूँ, आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूँ।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।।

गीता. ७।१०

हे पार्थ! तुम मुझे समस्त भूतों का सनातन कारण जानो। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि तथा तेजस्वियों का तेज हूँ।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।।

गीता. १०।२२

वेदों में मैं सामवेद हूँ, देवों में इन्द्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ तथा प्राणियों में चेतना अर्थात् ज्ञान एवं जीवनी शक्ति हूँ।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ।।

गीता. १०।३५

सामवेद के मन्त्रों में मैं बृहत्साम हूँ, छन्दों में गायत्री, महीनों में मार्गशीर्ष तथा ऋतुओं में वसन्त ऋतु हूँ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

गीता. १८।७८

हे राजन् ! जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री, विजय एवं विभूति होगी, ऐसा मेरा निश्चित मत है।

परमात्मा की प्राप्ति

नाऽयमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳस्वाम्।।

कठोपनिषद्. १।२।२३, मुण्डक. ३।२।३

यह परमात्मा न प्रवचन से, न बुद्धि से और न बहुत ज्ञानोपदेश सुनने से प्राप्त होता है प्रत्युत् जिसे यह स्वीकार कर लेता है, चुन लेता है उसी को प्राप्त होता है, उसी के लिये यह अपने स्वरूप को प्रकाशित कर देता है, उसी को दर्शन देता है।

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति ।

मुण्डकोपनिषद् ३। २। ९

निश्चय ही, जो कोई भी उस परब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है । तात्पर्य यह है कि उसकी आत्मा ब्रह्म में प्रवेश कर जाती है, वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई ।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।।

रामचरित मानस, अयोध्याकाण्ड. १२६।३

परमात्मा को वही जान पाता है जिसे वह पात्र समझकर स्वयं अपना ज्ञान देते हैं। भगवान् को जानकर पुरुष भगवान् ही हो जाता है, मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान् नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।।

कठोपनिषद्. १।३।९

जो मनुष्य विवेक पूर्ण बुद्धि रूपी सारथि वाला और मन रूपी लगाम को अपने अधिकार में रखने वाला होता है, वह मार्ग के उस पार अर्थात् जीवन के अन्त में विष्णु के उस सर्वश्रेष्ठ, परम उत्कृष्ट पद को प्राप्त होता है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ।।

कठोपनिषद्. १।३।८

जो विवेक सम्पन्न ज्ञानी अपने मन को वश में करने वाला तथा संयत चित्त एवं मन, वाणी तथा कर्मों की पवित्रता से सदा युक्त रहता है, वह उस पद को प्राप्त करता है, जिस पद की प्राप्ति के पश्चात् पुनर्जन्म नहीं होता।

माया

मायान्तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।।

श्वेताश्वतर उप. ४।१०

प्रकृति को माया तथा महेश्वर को मायी अथवा माया का स्वामी समझो। उसी परमेश्वर की माया के अवयवों से अर्थात् भिन्न भिन्न रूपों से
यह समस्त जगत् व्याप्त है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

गीता. ७।१४

यह मेरी अलौकिक त्रिगुणमयी माया अत्यन्त दुस्तर है। जो निरन्तर मेरी ही उपासना करते हैं वे इस माया को अर्थात् भव सागर को पार कर जाते हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

गीता, १८।६१

हे अर्जुन! ईश्वर समस्त प्राणियों को यन्त्र पर आरूढ़ अर्थात् चढ़े हुये के समान अपनी माया से घुमाता हुआ समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित रहता है।

आरोग्यता

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

कुमारसम्भव

निःसन्देह शरीर ही धार्मिक कार्य करने का प्रमुख साधन है। (अतः शरीर की रक्षा करना, उसको स्वस्थ रखना परमावश्यक है।)

व्यायामपुष्टगात्रस्य बुद्धिस्तेजो यशो बलम् ।

प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्माद् व्यायाममाचरेत् ।।

सुभाषित

व्यायाम से शरीर पुष्ट होता है तथा बुद्धि, तेज, यश और बल की वृद्धि होती है अतः व्यायाम अवश्य करना चाहिये।

स्वशरीरं सदा रक्षेदाहाराचारयोरपि ।
हितं पथ्यं सदाहारं जीर्ण भुञ्जीत मात्रया।।

महाभारत अध्याय, १४५

उचित आहार तथा सदाचार के द्वारा अपने शरीर की सदैव रक्षा करनी चाहिये। भूख लगने पर ही स्वास्थ्यप्रद हितकारी भोजन उचित मात्रा में करना चाहिये।

धर्मार्थ काममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमं ।।

सुभाषित

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष सभी का आधार उत्तम आरोग्यता ही है।

सरलता

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति।

प्रश्नोपनिषद्, १।१६

यह निर्मल ब्रह्मलोक उन्हीं को प्राप्त होता है, जिनमें कुटिलता, असत्य तथा छल, कपट नहीं होता।

सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।
एतावाञ्ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति।।

महाभारत, अश्वमेध पर्व

सब प्रकार की कुटिलता मृत्यु है तथा सरलता ब्रह्म पद अथवा मोक्ष है। ज्ञान का विषय केवल इतना ही है, व्यर्थ प्रलाप से क्या लाभ।

कुटिलता अनृत की, असत्य की तथा सरलता ऋत की, सत्य की प्रतीक है। भगवान् के शाश्वत सत्य नियम, ऋत हैं। सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि समस्त देव तथा भगवान् की अनन्त शक्तियाँ इसी ऋत की, इन सत्य नियमों की अनुगामी हैं।

महिलायें

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु ।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः।।

अथर्व. १४।१।४४

वैदिक संस्कृति में नव वधू को इतना सम्मान दिया जाता है कि उससे कहा गया है कि अपने श्वशुर के घर में साम्राज्ञी के समान रहो, अपने देवरों में भी साम्राज्ञी होकर रहो, ननद के साथ भी साम्राज्ञी के समान रहो तथा अपनी सास के साथ भी साम्राज्ञी के समान रहो।

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा
सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि
सुमनस्यमाना।

अथर्व. १४।२।१७

वहीं नव वधू को शिक्षा देते हुये कहा गया है कि (अघोरचक्षुः) तुम्हारी दृष्टि भी कभी क्रूर न हो, (अपतिघ्नी) ग्रह कलह अथवा अन्य किसी प्रकार से पति को मारने वाली अर्थात् उसे दुःखी करने वाली न

बनना, (स्योना) सब को सुख देने वाली बनना, (शग्मा) सब के लिये कल्याणकारी, (सुशेवा) अपने से बड़ों की सेवा करने वाली तथा सेवकों से भली प्रकार सेवित होने वाली अर्थात् सेवकों को भी कष्ट न देने वाली (सुयमा) परिवार में यम नियम के अनुसार रहने वाली अर्थात् उच्छृङ्खल न होने वाली, (वीरसूः) वीर पुत्रों को जन्म देने वाली, (देवृकामा) देवरों को प्रेम करने वाली तथा (सुमनस्यमाना) अच्छे मन वाली बनना जिससे हम सब सुखी एवं सम्पन्न हों।

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च
गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या
विशेषतः।।

विदुरनीति. ६।११

घर की स्त्रियाँ पूजा के योग्य, महालक्ष्मी स्वरूप, पुण्यरूप, घर को प्रकाशित करने वाली तथा घर की शोभा कही गयी हैं, अस्तु ये विशेष रूप से रक्षा किये जाने योग्य हैं।

सत्यासु नित्यं प्रियदर्शनासु,
सौभाग्ययुक्तासु गुणान्वितासु ।
वसामि नारीषु पतिव्रतासु,
कल्याणशीलासु विभूषितासु ।।

महाभारत अनुशासन पर्व, अध्याय. ११

लक्ष्मी जी कहती हैं कि जो स्त्रियाँ सत्यवादिनी और अपनी सौम्य वेषभूषा के कारण देखने में प्रिय होती हैं, जो सौभाग्यशालिनी, सद्गुणवती, पतिव्रता एवं कल्याणमय आचार विचार वाली होती हैं तथा जो सदा वस्त्राभूषणों से विभूषित रहती हैं, ऐसी स्त्रियों में मैं सदा निवास करती हूँ।

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नैव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।। मनु. २।६०

जिस कुल में पत्नी से पति तथा पति से पत्नी सदा प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहते हैं, वहाँ निश्चय ही सदा आनन्द, कल्याण एवं सौभाग्य निवास करता है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।।

मनु. ३।५६

जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ उनकी पूजा नहीं होती अर्थात् उनका सम्मान नहीं होता वहाँ की समस्त क्रियायें निष्फल हो जाती हैं।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ।।

मनु. ३।५७

जिस कुल में स्त्रियाँ कष्ट भोगती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जहाँ नारियाँ दुःखी नहीं रहतीं वह कुल सदैव फलता फूलता है, समृद्ध होता है।

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं
सत्कारेषूत्सवेषु च ।। मनु. ३।५९

इसलिये ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले पुरुषों के द्वारा ये स्त्रियाँ सत्कार के अवसरों तथा उत्सवों में सदा आभूषण, वस्त्र भोजन आदि के द्वारा पूज्य अर्थात् सम्मानित किये जाने के योग्य होती हैं।

<u>श्रद्धा</u>

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।।

ऋग्वेद. १०।१५१।१

१४० प्रेमामृत

श्रद्धापूर्वक यज्ञ की अग्नि प्रदीप्त की जाती है, श्रद्धापूर्वक ही उसमें हवि की आहुति दी जाती है। श्रद्धा को विभिन्न प्रकार के धनों में (भगस्य मूर्धनि) ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य में वाणी के द्वारा सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है।

भग ऐश्वर्यादिषट्कम् 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।१ समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य, ये छः भग के अङ्ग हैं।

अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः

यजुर्वेद, १९।७७

प्रजापति ने असत्य में अश्रद्धा एवं सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया है।

अतएव हमें केवल सत्य में ही श्रद्धा रखना चाहिये, असत्य में
नहीं, चाहे वह कितना ही आकर्षक क्यों न प्रतीत हो रहा हो।

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत
।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।।

गीता, १७।३

(भारत! सर्वस्य श्रद्धा सत्वानुरूपा भवति) हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है।

(अयं पुरुषः श्रद्धामय☺ यह पुरुष श्रद्धामय है। (यः यत् श्रद्धः सः एव स☺ जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही होता है।

दुष्टों का नाश

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।।

मनु. ८।३५।

आततायी चाहे गुरु, बालक,वृद्ध, ब्राह्मण अथवा विद्वान् कोई भी हो उसे बिना बिचारे ही मृत्यु दण्ड देना चाहिये। तात्पर्य यह है कि आततायी

को मारना आवश्यक है, इसमें कोई दोष नहीं है।

मारने के लिये हाथ में शस्त्र लिया हुआ, अग्नि से जलाने वाला, विष देने वाला, धन सम्पत्ति को लूटने वाला, धान्य तथा खेत पर बलपूर्वक अधिकार करने वाला, अपहरण करने वाला, ये छः प्रकार के दुष्ट आततायी कहलाते हैं।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ।।

भर्तृहरि नीतिशतक. ४२

विद्या से सुभूषित होने पर भी दुष्ट मनुष्य का त्याग कर देना चाहिये। मणि से अलंकृत होने पर भी क्या सर्प भयंकर नहीं होताघ

पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम् ।

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।।

सुभाषित

जैसे साँप को दूध पिलाने से केवल उसका विष ही बढ़ता है, उसी प्रकार मूर्ख को उपदेश देने से उसका क्रोध बढ़ता ही है, शान्त नहीं होता।

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम् ।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम् ।।

हितोपदेश

दुर्जन का प्रियवादी होना, उसके ऊपर विश्वास का आधार नहीं हो सकता क्योंकि उसकी जिह्वा के अग्रभाग अर्थात् मुख में तो अमृत होता है किन्तु हृदय में हालाहल विष भरा रहता है।

गौ

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः ।।

महाभारत अनुशासन पर्व, ६९।७

गौवें समस्त प्राणियों की माँ तथा सब को सुख देने वाली हैं।

यक्ष प्रश्नों के उत्तर

महाभारत के आरण्यक पर्व के अन्त में एक अत्यन्त रोचक एवं शिक्षाप्रद प्रकरण आया है।

एक दिन महाराज युधिष्ठिर वन में अपने भाइयों सहित बैठे हुये थे। उसी समय एक ब्राह्मण ने उनके पास आकर बड़े दुःख से कहा कि एक हिरण अपने सींग में फंसाकर उसकी

अरणी और मथानी ले गया है अतः वह लोग उस हिरण को पकड़कर उसकी अरणी तथा मथानी ला दें। इस पर पाण्डवों ने अत्यन्त प्रयास किया किन्तु वह हिरण को नहीं ढूँढ सके। तब प्यास से व्याकुल युधिष्ठिर ने नकुल को पानी लेने के लिये भेजा।

जल की खोज़ करते हुये नकुल एक सुन्दर सरोवर के पास पहुँचे।

वह जैसे ही पानी पीने के लिये बढ़े, वैसे ही आकाशवाणी हुयी कि इस सरोवर पर मेरा अधिकार है, तुम पानी पीने का साहस मत करो, पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो फिर पानी पिओ और ले जाओ किन्तु नकुल ने उसे अनसुना करके जैसे ही जल पिया, वह मृत होकर गिर पड़े।

इसके पश्चात् क्रमशः सहदेव, अर्जुन तथा भीम भी जल लेने गये और इसी प्रकार पानी पीकर मृत होकर गिर पड़े। अन्त में युधिष्ठिर स्वयं सरोवर के पास पहुँचे तथा अपने पराक्रमी भाइयों को मृत देखकर अत्यन्त दुःखी हुये और पानी पीने के लिये आगे बढ़े। तभी उसी प्रकार की आकाश वाणी हुयी जिसे सुनकर युधिष्ठिर रुक गये और सरोवर पर अपना अधिकार बताने वाले यक्ष के समस्त प्रश्नों का उत्तर दिया, जिससे प्रसन्न होकर यक्ष, जो वास्तव में यक्ष के रूप में साक्षात् धर्म ही था, ने उनके सभी भाइयों को पुनर्जीवित कर दिया।

यक्ष द्वारा पूछे गये कतिपय महत्वपूर्ण प्रश्नों के युधिष्ठिर द्वारा दिये हुये उत्तर निम्न प्रकार हैं-

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यमालयम् ।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्।।

महाभारत, वनपर्व, अध्याय. ११४

दिन, प्रतिदिन प्राणी यमलोक को जाते हैं फिर भी बचे हुये लोग अमर होने की इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है।

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना,
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां,
महाजनो येन गतः स पन्थाः ।।

महाभारत वनपर्व. ३।१२।३१५

श्रुति और स्मृतियों में अनेक प्रकार की शिक्षायें दी गयी हैं, ऐसा कोई एक मुनि नहीं है जिसका वचन प्रमाण माना जाय, धर्म का तत्व गूढ है, अतः महान पुरुषों के द्वारा अनुसरण किया गया मार्ग ही उचित मार्ग होता है।

स्वाध्याय एषां देवत्वं तप एषां सतामिव ।
मरणं मानुषो भावः परिवादोऽसतामिव ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।३१

नित्य वेद पढ़ना ब्राह्मणों में देवत्व है, सज्जनों के समान तप करना ब्राह्मणों में धर्म है, मृत्यु को प्राप्त होना ब्राह्मणों में मनुष्यत्व है तथा दूसरों की निन्दा करना ब्राह्मणों में दुष्टों के समान कर्म है।

देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः ।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।३९

देवता, अतिथि, पितर और सेवकों को तथा अपनी आत्मा इन पाँचो को जो यथा योग्य पदार्थ नहीं देता है, वह सांस लेता हुआ भी मरा हुआ ही है।

माता गुरुतरा भूमेः पिता उच्चतरश्च खात् ।
मनः शीघ्रतरं वायोश्चिन्ता बहुतरी नृणाम् ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।४१

माता भूमि से भी भारी अर्थात् श्रेष्ठ होती है, पिता आकाश से भी ऊँचा होता है, मन वायु से अधिक वेग वाला होता है तथा मनुष्यों के लिये चिन्ता सबसे अधिक कष्टदायक होती है।

सूर्य एकाकीचरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।४७, यजु. २३।१०

सूर्य अकेला चलता है, चन्द्रमा पुनः पुनः उत्पन्न होता है, अग्नि शीत की औषधि है तथा भूमि बीज बोने का सबसे बड़ा स्थान है। (सूर्य वास्तव में चलता नहीं है, चलता हुआ प्रतीत होता है क्योंकि पृथिवी उसके
चारों ओर घूमती है। चन्द्रमा नित्य नये नये रूप में प्रकट होता है इसीलिये कहा गया है कि वह बार बार जन्म लेता है।)

दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं दानमेकपदं यशः ।
सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं शीलमेकपदं सुखम्।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।४९

दक्षता ही धर्म का एक मात्र स्थान अर्थात् साधन है, दान ही यश का एक मात्र साधन है, सत्य स्वर्ग का एकमात्र साधन है तथा शील ही सुख का एक मात्र उपाय है।

वास्तव में दक्षता से कार्य करने से ही धर्म का आचरण होता है।

पुत्र आत्मा मनुष्यस्य भार्या दैवकृतः सखा ।
उपजीवनं च पर्जन्यो दानमस्य परायणम् ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।५१

पुत्र मनुष्य का आत्मा है, पत्नी भगवान् की दी हुयी मित्र है, मेघ मनुष्य का उपजीवन है (क्योंकि वर्षा से ही पृथिवी पर जीवन सम्भव है) तथा दान मनुष्य का श्रेष्ठ कर्म है।

धन्यानामुत्तमं दाक्ष्यं धनानामुत्तमं श्रुतम् ।
लाभानां श्रेयमारोग्यं सुखानां तुष्टिरुत्तमा ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।५३

धन्य लोगों में, श्रेष्ठ पुरुषों में दक्षता अर्थात् महत्वपूर्ण कार्यों को अच्छी प्रकार सम्पन्न करने की योग्यता, उत्तम है, धनों में विद्या उत्तम है, लाभों में आरोग्यता उत्तम है और सुख में तुष्टि तथा सन्तोष उत्तम है।

आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रयीधर्मः सदाफलः ।
मनो यम्य न शोचन्ति सद्भिः सन्धिर्न जीर्यते ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।५५

सब भूतों को अभय देना सबसे उत्तम धर्म है, वेदोक्त धर्म सदा फल देने वाला है, मन को रोकने पर शोक नहीं होता तथा सज्जनों की
सन्धि अर्थात् मित्रता कभी नहीं टूटती।

मानं हित्वा प्रियो भवति क्रोधं हित्वा न शोचति ।
कामं हित्वाऽर्थवान्भवति लोभं हित्वा सुखी भवेत् ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।५७

अभिमान को त्यागने से मनुष्य सब का प्रिय होता है, क्रोध को त्यागने से शोक नहीं करना पड़ता, काम को त्यागने से पुरुष धनी होता है तथा लोभ को त्यागने से सुखी होता है।

मृतो दरिद्रः पुरुषो मृतं राष्ट्रमराजकम् ।
मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।५९

दरिद्र पुरुष मृत के समान होता है, अराजकता से युक्त देश मृत के समान होता है, वेद को न जानने वाले पुरोहित द्वारा किया गया श्राद्ध निष्फल होता है तथा बिना दक्षिणा दिये हुये यज्ञ निष्फल होता है।

दिवं स्पृशति भूमिं च शब्दः पुण्यस्य कर्मणः ।
यावत्स शब्दो भवति तावत्पुरुष
उच्यते ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।६३

पुण्य कर्म का यश आकाश तथा भूमि में सर्वत्र फैलता है। जब तक वह यश रहता है, तब तक वह पुरुष कहा जाता है, उसके विषय में लोक में बात होती है।

तुल्ये प्रियाप्रिये यस्य सुखदुःखे तथैव च ।
अतीतानागते चोभे स वै सर्वधनी नरः ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।६४

जिसके लिये प्रिय, अप्रिय, सुख, दुःख, भूत, भविष्य समान हों, वही सबसे अधिक धनी है।

यशः सत्यं दमः शौचमार्जवं ह्रीरचापलम् ।
दानं तपो ब्रह्मचर्यमित्येतास्तनवो मम ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९८।७

धर्म ने महाराज युधिष्ठिर से कहा कि यश, सत्य, इन्द्रिय संयम, पवित्रता, सरलता, लज्जा, धैर्य, दान, तप और ब्रह्मचर्य यह सब मेरे शरीर के अंग हैं।

अहिंसा समता शान्तिस्तपः शौचममत्सरः
।

द्वाराण्येतानि मे विद्धि प्रियो ह्यसि सदा मम।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९८।८

अहिंसा, समता, शान्ति, तप, शौच तथा प्रमादरहित होना यह मेरी प्राप्ति के द्वार हैं यह जानो। हे युधिष्ठिर! तुम सदा से मुझे प्रिय हो।

महत्वपूर्ण वाक्य

परिमितं भूतम् अपरिमितं भव्यम् ।।

गोपथ ब्राह्मण. पूर्व. ५।३

भूत सीमित है, भविष्य असीमित है।

बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा।।

केवल ईश्वर की इच्छा ही बलवान् होती है।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः ।।

कठोपनिषद्. १।२७

मनुष्य धन से तृप्त नहीं हो सकता ।

परोक्षप्रिया इव हि देवा प्रत्यक्ष द्विषः ।।

गोपथ ब्राह्मण. पूर्व. १।१

परोक्ष कामा हि देवाः ।

शतपथ ब्राह्मण. ६।१।१।२

देवता परोक्ष प्रिय होते हैं। उन्हें प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होना अच्छा नहीं लगता।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।।

मन ही मनुष्यों के बन्धन तथा मोक्ष का कारण है।

योगः कर्मसु कौशलम् ।।

गीता. २।५०

योग के अनुसार कर्म करना ही कर्म करने की कुशलता है, दक्षता है।

केवलाघो भवति केवलादी ।।ऋग्वेद

भूखे व्यक्ति को न खिलाकर अकेले खाने वाला पाप का भागी होता है।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।।

जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है।

शठे शाठ्यं समाचरेत् ।।

दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार करना चाहिये।

वयं राष्ट्रे जाग्रयाम पुरोहिताः ।।

यजुर्वेद. ९।२३

हम अग्रणी बनकर राष्ट्र में जाग्रत रहें।

सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या ।

शतपथ. १।१।१।४

सत्य बोलने वाले ही देवता होते हैं, अनृत अर्थात् असत्य बोलने वाले मनुष्य होते हैं।

हेयं दुःखं अनागतम् ।

जो दुःख अभी आया नहीं है उसकी कल्पना करके चिन्तित एवं दुःखी नहीं होना चाहिये।

माता गुरुतरा भूमेः ।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।४१

माता पृथ्वी से भारी अर्थात् श्रेष्ठ होती है।

गां मा हिंसीः ।

यजुर्वेद. १३।४३

गाय की हिंसा मत करो, गाय को मत मारो।

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।

शतपथ. १।७।१।५

यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है।

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु नो पन्थानः । अथर्व. १४।१।३४

हमारे मार्ग कण्टक रहित तथा सरल हों।

अति सर्वत्र वर्जयेत् ।

अति कहीं भी नहीं करना चाहिये।

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।

गीता. २।३४

सम्माननीय पुरुष के लिये अपयश मृत्यु से भी बढ़कर है।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

जो व्यवहार अपने को बुरा लगे उसे दूसरों के साथ नहीं करना चाहिये।

सा विद्या या विमुक्तये ।

विद्या वह है जिससे मुक्ति प्राप्त हो।

विद्ययाऽमृतमश्नुते ।

यजुर्वेद. ४०।१४

विद्या से अमृत अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है।

पाप-पुण्य

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।

सुभाषित

अट्ठारह पुराणों में व्यास जी के दो वचन महत्वपूर्ण हैं। दूसरों का उपकार करना पुण्य है तथा दूसरों को कष्ट पहुँचाना पाप।

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति ।।

बृहदारण्यक उप. ३।२।१३

पुण्य कर्म से पुण्य होता है और पाप कर्म से पाप ।

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये,
महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा,
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि

भर्तृहरि नीति. ९८

जङ्गल में, रणस्थली में शत्रुओं के बीच में, जल एवं अग्नि में, महासागर में, पर्वत की चोटी पर अथवा शयनावस्था, असावधानी की दशा तथा विषम परिस्थिति के उत्पन्न होने पर पूर्व सञ्चित पुण्य ही मनुष्य

की रक्षा करते हैं।

पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम् ।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते ।।

विदुरनीति. ३।६१

पाप कर्म करता हुआ पुरुष कलङ्कित होकर पाप कर्मों के फलों को ही भोगता है और श्रेष्ठ कर्म करता हुआ उत्तम कीर्ति वाला अच्छे फलों को भोगता है।

तस्मात् पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः ।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ।।

विदुरनीति. ३।६२

इसलिये उत्तम व्रत वाला पुरुष कभी भी पाप कर्म का आचरण न करे क्योंकि बार बार किया गया पाप का आचरण पापाचारी मनुष्य की बुद्धि को नष्ट कर देता है।

नष्टः प्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः ।
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ।।

विदुरनीति. ३।६३

जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है वह मनुष्य सदा पाप कर्म ही करता है। बार बार किया गया उत्तम कर्म बुद्धि को बढ़ाता है।

यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते ।
अगाधपङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते।।

विदुरनीति. ७।३५

जो मनुष्य अपने पूर्व किये हुये पाप का विचार न करते हुये उसे बार बार करता है, वह दुर्बुद्धि घोर विपत्ति रूपी अगाध कीचड़ में फंस जाता है।

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ।
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ।।

मनु. ८।८५

पापी लोग अपने मन में यह समझ ते हैं कि हमारे पाप को कोई नहीं देखता परन्तु वह उनका भ्रम है क्योंकि उनके पाप देवता तथा परमात्मा जो कि सर्वान्तर्यामी व कर्म फलदाता है, देखते हैं।

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्वं कल्याण मन्यसे ।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः ।। मनु. ८।९१

हे कल्याण की इच्छा करने वाले पुरुष! जो तुम यह मानते हो कि तुम एकाकी हो और तुम्हारे कार्यों को कोई देख नहीं रहा है, वह ठीक नहीं है क्योंकि तुम्हारे पापों और पुण्यों को देखने वाला परमात्मा सदैव तुम्हारे हृदय में रहता है।

भारतवर्ष

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।

विष्णु पुराण. २।३।२४

निश्चय ही देवगण जिसकी प्रशंसा का निरन्तर गान करते हैं और जहाँ देवता भी बार बार पुरुष के रूप में अवतरित होते हैं, ऐसी स्वर्ग एवं मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करने वाली भारत भूमि में जन्म लेने वाले धन्य हैं।

एतद्देश प्रसूतस्य
सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

मनु. २।२०

इस देश में उत्पन्न हुये विद्वानों के सान्निध्य से पृथिवी पर रहने वाले सभी मनुष्य अपने अपने आचरण तथा कर्तव्यों की शिक्षा ग्रहण करें।

अपि स्वर्णमयीं लङ्कां न मे लक्ष्मण रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।।

हे लक्ष्मण! यह स्वर्णमयी लङ्का भी मुझे रुचिकर नहीं लगती, जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी अधिक श्रेष्ठ होती है।

सब के कल्याण की इच्छा

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं
नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

सुभाषित

न तो मैं राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग और न मोक्ष। मैं तो केवल दुःखों से पीड़ित प्राणियों के सन्ताप के नाश की कामना करता हूँ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।

सुभाषित

सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी कल्याण का दर्शन करें अर्थात् सभी का कल्याण हो, कोई दुख को प्राप्त न हो।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

सुभाषित

यह अपना है, यह पराया है- ऐसा विचार संकुचित चित्त वालों को हुआ करता है। उदार चित्त वालों के लिये तो सम्पूर्ण भूमण्डल ही एक परिवार के समान है।

गायत्री उपासना से ब्रह्मप्राप्ति

स्तुता मया वरदा वेदमाता

प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।

मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।।

अथर्व.१९।७१।१

(मया वरदा प्रचोदयन्तां द्विजानां पावमानी वेदमाता स्तुता) मेरे द्वारा वर देने वाली, श्रेष्ठ प्रेरणा देने वाली तथा द्विजों को पवित्र करने वाली वेदमाता अर्थात् ज्ञान की माँ गायत्री की स्तुति की गयी । यह माँ (मह्यं आयुः, प्राणं, प्रजां, पशुं, कीर्तिं, द्रविणं, ब्रह्मवर्चसं दत्वा ब्रह्मलोकं व्रजत) मुझे पूर्ण आयु, स्वस्थ एवं शक्तिशाली प्राण तथा इन्द्रियाँ, उत्तम सन्तानए पशु एकीर्तिए धन एवं ब्रह्मतेज देकर अन्त में ब्रह्मलोक को ले जाती है ।

अथवाए ;हे माँ !) मुझे इस जीवन में पूर्ण आयुए स्वस्थ एवं शक्तिशाली प्राण तथा इन्द्रियाँए उत्तम सन्तानए पशुए धनए कीर्ति एवं ब्रह्मतेज देकर अन्त में ब्रह्मलोक को ले जाओ ।

यहाँ वेदमाता का अर्थ वेदों की माँ नहींए प्रत्युत ज्ञान की माँ है ।

यह है गायत्री मन्त्र की महिमा तथा उसकी उपासना का फल । यह वेद वाक्य है, स्वयं परब्रह्म की कल्याणमयी वाणी हैए अत: इसमें संशय का कोई स्थान म्हीं है ।

इस प्रकार स्वयं वेद में ही यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रणव सहित गायत्री के जप से न केवल आध्यात्मिक उन्नति होती हैए न केवल स्वर्ग तथा मोक्ष की ही प्राप्ति होती हैए प्रत्युत इससे समस्त श्रेष्ठ सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के साथ साथ ज्ञानए लौकिक ऐश्वर्यएकीर्तिए धनए सन्तानएस्वस्थ जीवन एवं दीर्घ आयु की भी प्राप्ति होती है और अन्त में यह दिव्य ज्ञानस्वरूपा माँ अपने उपासक को ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराती है।

राष्ट्रीय प्रार्थना

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।

यजु. २२।२२

हे (ब्रह्मन्) महान् शक्तिवाले परमेश्वर ! हमारे (राष्ट्रे ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मणः आ जायताम्) राष्ट्र में ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण उत्पन्न हों, (शूरः इषव्यः अतिव्याधी महारथः राजन्यः आ जायताम्) शूर, बाण वेधन करने में कुशल, शत्रुओं को भली प्रकार परास्त करने वाले महारथी क्षत्रिय उत्पन्न हों, (अस्य यजमानस्य धेनुः दोग्ध्री) इस यजमान अर्थात् यज्ञ करने वाले पुरुष की गाय दूध देने वाली हो, (अनड्वान् वोढा) बैल वहनशील हों, (सप्तिः आशुः) घोड़ा शीघ्र गमन करने वाला हो, (योषा पुरन्धिः) स्त्री सर्वगुण सम्पन्न नगर का नेतृत्व करने वाली हो, (रथेष्ठाः) रथ में बैठकर युद्ध करने वाला (जिष्णुः वीरः) वीर विजेता हो, (युवा सभेयः आजायताम्) युवा होकार पराक्रम करने वाला तथा सभा के योग्य उत्तमवक्ता पुत्र उत्पन्न हो, (नः पर्जन्यः निकामे निकामे वर्षतु) हमारे राष्ट्र में समय समय पर आवश्यकतानुसार वृष्टि हो, (नः ओषधयः फलवत्यः पच्यन्ताम्) हमारी ओषधियाँ अर्थात् अन्न की फसलें फलवती होकर परिपक्वता को प्राप्त हों और (नः योगक्षेमः कल्पताम्) हमारा योगक्षेम उत्तम रीति से होता रहे।

प्रेमामृत

सामाजिक जीवन

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।

ऋग्वेद, १०।१९१। २

तुम सब संगठित होकर साथ साथ चलो, मिलकर रहो, परस्पर विरोध को त्यागकर प्रेमपूर्वक वार्तालाप करो, तुम लोगों का मन समान भाव से शांत होकर ज्ञान प्राप्त करे। जिस प्रकार तुम्हारे विद्वान् पूर्वज अपने अपने भाग में आने वाली धन सम्पदा को परस्पर सहमति से ग्रहण किया करते थे, उसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना अपना अंश स्वीकार करते हुये ईश्वर की उपासना करो।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।

ऋग्वेद, १०।१९१।४

तुम लोगों के संकल्प और हृदय एक समान हों, तुम लोगों का मन एक समान हो जिससे तुम्हारा सामाजिक जीवन (सुसह असति) सुसंगठित एवं शोभनीय हो।

तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु

गायत्री उपासना की सफलता तथा जीवन की श्रेष्ठता एवं पवित्रता के लिये आवश्यक है, मन की निर्मलता क्योंकि मन ही समस्त इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है, वही अच्छे अथवा बुरे जीवन का निर्माण करता है । अतः हमें सदैव यह प्रयास

करना चाहिये कि हमारे मन में कभी कोई बुरा विचार तथा निकृष्ट संकल्प न आये, हमारे सभी संकल्प तथा कर्म कल्याणकारी हों। इसके लिये यजुर्वेद के निम्नाङ्कित मन्त्रों में की गयी प्रार्थना अद्वितीय एवं सर्व श्रेष्ठ है ।

संसार की किसी भी भाषा में ऐसी अद्भुत प्रार्थना नहीं है । प्रत्येक

विद्यार्थी एवं प्रबुद्ध व्यक्ति को इन मन्त्रों को ध्यान पूर्वक पढ़कर अपने मन को शिव संकल्प वाला बनाना चाहिये ।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।

दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः

शिवसंकल्पमस्तु।। यजु. ३४।१

(यत् जाग्रतः दूरं उत् एति) जो जाग्रत अवस्था में दूर दूर जाता है, (तत् उ सुप्तस्य तथा एव दैवं एति) और जो सुप्तावस्था में उसी प्रकार आत्मा की ओर चला जाता है, (दूरङ्गमं ज्योतिषां एकं ज्योति☺ दूर-दूर जाने वाला, तथा सभी ज्ञानेन्द्रियों को प्रकाशित करने वाली एक मात्र ज्योति के रूप में स्थित (तत् मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो, सत् एवं कल्याणकारी सङ्कल्प वाला हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति
विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।२

(येन अपसः मनीषिणः धीराः यज्ञे विदथेषु कर्माणि कृण्वन्ति) जिसकी सहायता से धर्मनिष्ठ, सत्यवादी आप्त विद्वान् एवं मनीषी तथा धीर पुरुष यज्ञों में, विज्ञान सम्बन्धी कार्यों में तथा युद्धों अथवा जीवन के संघर्षों में विभिन्न कर्म करते हैं (यत् प्रजानां अन्तः अपूर्वं यक्षं) जो प्राणियों के अन्तःकरण में अपूर्व अर्थात् सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला अद्भुत पूजनीय यक्ष स्वरूप है, (तत् मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।३

(यत् प्रज्ञानम् उत चेतः धृतिः च) जो ज्ञान, चेतना, स्मृति तथा धैर्य आदि मानवीय सद्गुणों एवं भावनाओं का आधार है, (यत् प्रजासु अन्तः अमृतं ज्योति☺ जो प्राणियों के

अन्त:करण में अमृत ज्योति स्वरूप है, (यस्मान् ऋते किं चन कर्म न क्रियते) तथा जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, (तत् मे मन: शिव सङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव संङ्कल्प वाला हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।४

(येन अमृतेन भूतं भुवनं भविष्यत् सर्वं इदं परिगृहीतम्) जिस अमृत स्वरूप मन से भूत, भविष्य तथा वर्तमान में स्थित सब कुछ भली प्रकार ग्रहण किया जाता है, जाना जाता है, (येन सप्तहोता यज्ञ: तायते) शरीर में निरन्तर चलने वाला सप्तहोता यज्ञ जिसके द्वारा सम्पन्न होता है (तन्मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

सप्तहोता–प्राण, अपान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र वाणी तथा मन, ये शरीर रूपी यज्ञ के सात होता हैं। (यजु.२२।२३)

यस्मिन्नृच: साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवारा:। यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।५

(यस्मिन् ऋच: साम यजूंषि) जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा (यस्मिन्) जिसमें अथर्ववेद (रथनाभौ अरा: इव प्रतिष्ठिता☺ इस प्रकार प्रतिष्ठित रहते हैं जिस प्रकार रथ के

पहिये की नाभि में पहिये के आरे प्रतिष्ठित रहते हैं, (यस्मिन् प्रजानां सर्वं चित्तं ओतम्) तथा जिसमें प्रजाओं का सम्पूर्ण चित्त ओत प्रोत रहता है (तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु)

वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभि- र्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।६

(यत् सुषारथिः अश्वान् इव मनुष्यान् नेनीयते) जो मनुष्यों को इस प्रकार इधर उधर ले जाता है, जिस प्रकार कुशल सारथि अश्वों को ले जाता है (अभीशुभिः वाजिन इव) तथा जो इन्द्रियों एवं शरीर को इस प्रकार नियन्त्रण में रखता है जैसे कुशल सारथि रस्सियों से बलशाली एवं वेगवान् अश्वों को नियन्त्रण में रखता है, (यत् हृत्प्रतिष्ठं अजिरं जविष्ठं) जो हृदय में स्थित रहने वाला, कभी वृद्ध न होने वाला तथा अत्यन्त वेगवान् है (तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

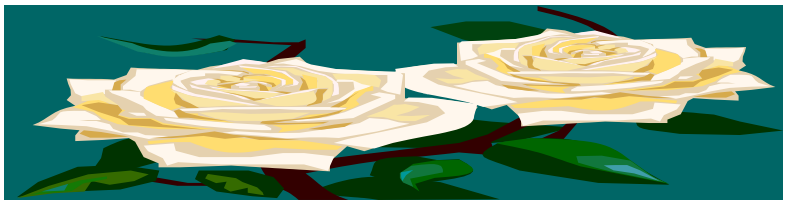

मन्त्र सूची

क्र. सं.	मं. सं.	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मं. सं.	पृष्ठ संख्या
१	अकामो धीरो	७	२७	नमः शम्भवाय च	२
२	अग्न आयाहि	५	२८	पुरुष एव इदं	२७
३	अग्ने नय	७	२९	पावकानः सरस्वती	८
४	अग्ने व्रतपते	५१	३०	प्रजापते न त्व	१९
५	अघोरचक्षुः	१३७	३१	ब्रह्मचर्येण	६१
६	अग्निमीले	४	३२	भद्रं कर्णेभिः	१३
७	अम्बितमे	९	३३	मा मा हिंसीत्	१८
८	आब्रह्मन् ब्राह्मणो	१५४	३४	य आत्मदा	१६
९	इन्द्र श्रेष्ठानि	१०	३५	यज्जाग्रतो	१५६
१०	इन्द्रं मित्रं	२८	३६	यत्प्रज्ञानमुत	१५७
११	ईशावस्यमिदं	११६	३७	यन्मे छिद्रं	१४
१२	कृतं मे दक्षिणे	२१	३८	येनेदं भूतं	१५७
१३	कुर्वन्नेवेह कर्माणि	११६	३९	येन कर्माण्यपसो	१५६
१४	घृतेन त्वं तन्वं	७९	४०	यः प्राणतो	१७
१५	तच्चक्षुर्देवहितं	११	४१	यस्य भूमिः	१
१६	तेजोसि तेजो	१०	४२	यस्य वातः	२
१७	तत्सवितुर्वरेण्यं	३	४३	यस्य सूर्यश्चक्षुः	१
१८	तदेवाग्निस्तदा	२९	४४	यस्मिन् ऋचः	१५८
१९	तमीशानं	१२	४५	यस्येमे हिमवन्तो	१७
२०	तस्मात् यज्ञात्	४२	४६	येन द्यौरुग्रा	१९
२१	त्वं हि नः पिता	२१	४७	यो भूतं च	१
२२	दिवो विष्ण उत	९	४८	यो विद्यात्	३१

२३	द्वा सुपर्णा	३९	४९	वायुरनिलं	३३
२४	द्यौः शान्तिः	२२	५०	वेदाहमेतं	६
२५	नमः सायं	२१	५१	विश्वानि देव	७
२६	धाता दधातु नो	९	५२	विश्वतश्चक्षुरुत	६

मन्त्र सूची

क्र. सं.	मं. सं.	पृष्ठ संख्या
५३	शं नो मित्रः	१५
५४	शं नो वातः	१६
५५	शिवा नः शंतमा	८
५६	शं नो देवी	१५
५७	शतहस्त समाहर	९७
५८	शं नः सूर्य	१४
५९	श्रद्धयाग्निः	१३९
६०	सनः पितेव	१२
६१	सहस्रशीर्षा	५
६२	समानीव आकूतिः	१५५
६३	सनो बन्धुर्जनिता	२०
६४	संगच्छध्वं	१५५
६५	स पर्यगाच्छुक्र	३०
६६	स्वस्ति न इन्द्रो	१३
६७	स्वस्ति पन्थां	५५
६८	साम्राज्येधि	१३७
६९	स्तुता मया वरदा	१५३
७०	सुषारथिः	१५८
७१	हिरण्मयेन पात्रेण	३८, ५०
७२	हिरण्यगर्भः	१६

७३	त्रिपादूर्ध्व उदैत्	२४
७४	त्र्यम्बकं यजामहे	३
७५	अश्रद्धामनृते	१४०

श्लोक सूची

क्र. सं.	श्लोक	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	श्लोक	पृष्ठ संख्या
१	अणोरणीयान्	३२	२५	अशब्दमस्पर्शम्	३१
२	अर्थ कामेष्व	४३	२६	अनित्यानि शरीराणि	४७
३	अजरामरवत्	४७	२७	अग्नौ प्रास्तं	४७
४	अहिंसयैव	४८	२८	अधर्मेणैधते	४९
५	अपाने जुह्वति	६३	२९	अभिवादनशीलस्य	५९
६	अद्भिर्गात्राणि	६०	३०	अन्नाद्भवन्ति भूतानि	७९
७	अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः	८१	३१	अविद्यायामन्तरे	८४
८	अनन्याश्चिन्तयन्तो	८४	३२	असंशयं महाबाहो	७०
९	अभयं सत्व	७०	३३	अनेक चित्त	७३
१०	अहिंसा सत्यम	७१	३४	असत्यमप्रतिष्ठं	७२
११	अहं भक्त पराधीनो	८६	३५	अर्थानामार्जने	९०
१२	अष्टौ गुणाः	९२	३६	अतिरूपेण वै	९२
१३	अथकेन प्रयुक्तो	९७	३७	अनुद्वेगकरं वाक्यं	८९
१४	अपवित्रः पवित्रो	८७	३८	असम्भवं हेममृगस्य	९६

१५ अघं स केवलं १०३
१६ अनभ्यासेन १२२
१७ अग्नये हूयते ७६
१८ अध्यापनमध्ययनं १२३
१९ अपि स्वर्णमयी १५२
२० अर्थागमो नित्यम् १०५
२१ अतिमानोऽतिवा १२८
२२ अहन्यहनि भूतानि १४२
२३ अष्टादश पुराणेषु १४९
२४ अभिमानः श्रियं १२९
४९ आलस्यं हि ९४
५० आशा पाश शतैः ७२
५१ आयुषः क्षण १०४
५२ आर्द्र पादस्तु ५८
५३ आचारः परमो धर्मः
देवः सर्व २९
५४ आचारः प्रभवो ५५
५५ आत्मनाऽत्मानं ४२
५६ आत्मानं रथिनं ३९
५७ आद्यं यत्त्र्यक्षरं ३३
५८ आस्ते भाग्यमासीन
५९ आवृतं ज्ञानमेतेन ९८
६० आरम्भगुर्वी क्षयिणी
एह्येहीति तमाहुतयः
६१ आपत्काले तु १३०
६२ आयुक्तः प्राकृतः १२०
३९ अधिष्ठानं तथा १०४
४० अहिंसा सत्यवचन ९३
४१ अपरेयमितस्त्वन्यां १३१
४२ अहिंसा समता १४६
४३ अयं निजः १५२
४४ आमरणान्ताः ९३
४५ आहार निद्रा ८२
४६ आचाराल्लभतेह्यायुः ५८
४७ आनृशंस्य परो १४५
४८ आचाराद्विच्युतो ५७
७८ एवं बुद्धेः ९८
७९ एकेन शुष्कवृक्षेण १०२
८० एकोऽहमस्मीति १५१
८१ एतद्देश प्रसूतस्य १५१
५५ ८२ एको
८३ एकाक्षरं परब्रह्म ५३
८४ एतद्ध्येवाक्षरं ३३
८५ एष सर्वेश्वर ३४
८६ एतदक्षरमेतां च ५३
११३ ८७ एतदालम्बनं ३४
८८ एतां दृष्टिमवष्टभ्य ७२
१२९ ८९
७८
९० ऐश्वर्यस्य विभूषणं ९१
९१ ओमिति ब्रह्म ३५

६३ इन्द्रियाणि ह्यानाहुः ओमित्येदक्षर ३६
६४ इन्द्रियाणि पराण्याहुः ३६ ४२
६५ इन्द्रियाणां तु सर्वेषां ओमित्येकाक्षरं ३६
६६ ईश्वरः सर्व भूतानां १३५
६७ उद्यमः साहसं ११२
६८ उद्योगिनं पुरुष ११२
६९ उत्साहो बल ११४
७० उद्यमेन हि ११४
७१ उपकारः परोधर्मः १२१
७२ उत्सवे व्यसने १३०
७३ उद्धरेदात्मनात्मानं ४१
७४ उद्विजन्ते यथा ५२
७५ उत्तिष्ठत् जाग्रत् ८१
७६ उदितो नुदिते ७६
७७ ऋषयश्चैव ५२
१०७ क्रोधाद्भवति ९९
१०८ क्रोधः प्राणहरः ९९
१०९ क्रोधो वैवस्वतो ९९
११० गते शोको न १०५
१११ गच्छन् पिपीलिको ११४
११२ गायन्ति देवाः १५१
११३ गुरुं वा बाल १४०
११४ घृतेन त्वं तन्वं ७९
३९ ९२
९३ ॐ तत्सदितिनिर्देशो ३६
६९ ९४
९५ ओङ्कार पूर्विका ५३
९६ कर्म ब्रह्मोद्भवं ७९
९७ कलहान्तानि ९४
९८ कलिः शयानो ११३
९९ कर्मण्येवाधिकारस्ते ११७
१०० काममाश्रित्य ७२
१०१ काम एष क्रोध ९८
१०२ काव्यशास्त्र १०९
१०३ कामात्मता न १२७
१०४ केयूराणि न ११०
१०५ कोऽति भारः ९०
१०६ कोकिलानां १०८
१३६ तुल्ये प्रिया प्रिये १४६
१३७ तृष्णां छिन्धि १११
१३८ तृणानि भूमि ९१
१३९ तेषां त्रयाणां १०१
१४० तेजः क्षमा ७१
१४१ तेषामेवैष ५१
१४२ तेषामसौ विरजो १३६
१४३ त्यक्त्वा सुदुस्त्यज २४

११५ चरन् वै मधु ११४
७१
११६ चञ्चलं हि मनः ७०
६३
११७ चातुर्वण्यं मया १३२
११८ जपतां जुह्वतां ५४
११९ जातस्य हि ध्रुवो ४०
१२० जाड्यं धियो १२६
१२१ जितात्मानः ६५
१२२ तस्मादेताः सदा १३९
१२३ तमेव शरणं ८७
१२४ तपते यतते १००
१२५ त एव हि त्रयो १००
१४३
१२६ तयोर्नित्यं १०१
१२७ तस्मादसक्तः १०८
१२८ तपो बलं ९२
१२९ तमसो लक्षणं १२०
१३० तस्मादोमित्युदाहृत्य ३६
तस्माद्धर्मं ४८
१३१ तद्विद्धि प्रणिपातेन ८१
१३२ तपो विद्या च १२३
१३३ देहिनोऽस्मिन्यथा ४०
१३४ देहि सौभाग्य २५
१३५ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञ ८०
१६५ धर्मार्थकाम १३६
१४४ दम्भो दर्पोऽभिमानश्च
१४५ दह्यन्ते ध्यायमानानां
१४६ दत्तमिष्टं हुतं ५२
१४७ दानं प्रियवाक् ९२
१४८ दानं भोगो १०८
१४९ दाक्ष्यमेकपदं १४४
१५० दिवं स्पृशति १४६
१५१ ताराणां भूषणं ७५
१५२ दुर्जनः प्रियवादी १४१
१५३ दुराचारो हि पुरुषो ६०
१५४ देवता तिथि भृत्यानां
१५५ देवान्भावयता ७९
१५६ देव द्विज गुरु ८८
१५७ देहात्मदृष्टयो १०१
१५८ तस्मात्पापं न १५०
१५९
१६० दैवी ह्येषा गुणमयी १३५
१६१ देवि प्रपन्नार्तिहरे २६
१६२ द्रव्याणि भूमौ ४६
१६३ दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं ५९
१६४ धर्म एव हतो ४८
१९४ पर्जन्य नाथा १२५

१६६ धर्मार्थकाम १०९
१६७ धन्यानामुत्तमं १४५
१६८ ध्येयं सदा २४
१६९ ध्यायतो विषयान् ९९
१७० न देवा दण्डमादाय९६
१७१ नष्टः प्रज्ञः १५०
१७२ न त्वहं कामये १५२
१७३ न तदस्ति पृथिव्यां पुन्नाम्नो नरकात् १०२
१७४ न जातु कामः १२७
१७५ न हीदृशमनायुष्यं ६०
१७६ न चौर हार्यम् ७४
१७७ न भक्षयति यो ५७
१७८ न हायनैर्न पलितैर्न धनुः ३५
१७९ न तत्र सूर्यो ३०
१८० नास्ति विद्यासमं ७३
१८१ नाऽहं वसामि ८६
१८२ नास्ति तृष्णासमं ९७
१८३ नास्तिक्यं वेदनिन्दा प्राणायामा ब्राह्मणस्य ६२
१८४ नास्ति सत्यात् ५०
१८५ नाधर्मश्चरितो ४९
१८६ नास्ति कामसमो १००
१८७ नाभिषेको न ११५
१८८ नाऽयमात्मा १३४
१९५ परोक्षे कार्य १३०
१९६ पद्माकरं दिनकरो १२२
१९७ परित्राणाय ४६
१९८ पार्थनैवेह ६८
१९९ पापं कुर्वन् १५०
२०० पापान्निवारयति १२९
२०१ पिबन्ति नद्यः १२१
११९ २०२
२०३ पुष्पिण्यौ चरतो ११३
२०४ पुरुषः स परः ८६
२०५ पुत्र आत्मा १४४
२०६ पूजनीया महाभागा १३८
४४ २०७ प्रणवो
२०८ प्रशान्तमनसं ६७
२०९ प्रयत्नाद्यतमानस्तु ६८
२१० प्रतिग्रहं समर्थोऽपि १२४
२११ प्रारभ्यते न १११
५९ २१२
६२
२१३ प्राणायामैर्दहेद्दोषान् ६३
२१४ प्राप्य पुण्यकृतां ६८
२१५ प्रियवाक्यप्रदानेन ९०
२१६ बन्धुरात्मा ४२
२१७ ब्रह्मचर्य व्रत ६२

१८९ निग्रहानुग्रहैः १३२
१९० निवृत्ता मधुमांसेभ्यः ५५
ब्रह्मचर्यं परं शौचं ६१
१९१ निन्दन्तु नीति १११
१९२ नैनं छिन्दन्ति ४०
१९३ पयः पानं १४१
२२३ ब्राह्मे मुहूर्ते ५४
२२४ ब्राह्मणः सर्वलोकां १२४
२२५ बीजं मा सर्वभूतां १३३
२२६ भवानी शङ्करौ वन्दे २२
यथैधस्तेजसा ८२
२२७ भवन्ति नम्रास्तरवः १२१
प्रवृत्तिर्भूतानां ८४
२२८ ममैवांशो ४८
२२९ महर्षीणां भृगुरहं ८०
२३० मनः प्रसादः ८८
२३१ मत्तः परतरं १३१
२३२ मनः पूर्वागमा ६९
२३३ महाजनस्य १२६
२३४ मातेव रक्षति ७४
२३५ माता यस्य १०३
२३६ मायान्तु प्रकृतिं १३५
२३७ माता मित्रं १०२
२३८ मातरः सर्व १४१
२३९ मानं हित्वा १४५
२४० मातृवत्पर ९५
२१८ ब्रह्म वै मृत्यवे ६२
२१९
२२० ब्रह्मण्याधाय ८३
२२१ बृहत्साम तथा १३३
२२२ ब्राह्मणे दारुणं १२५
२५२ यतो यतो ह्यपि ६९
२५३ यतो यतो निश्चरति ७०
२५४ यदा चर्मवदाकाशं ८५
२५५
२५६ यतः
२५७ यदा किञ्चिज्ज्ञो हं १२६
२५८ यज्ञदान तपः ७८
२५९ यज्ञार्थात् कर्मणो ११६
२६० यथा प्रदीप्तं ज्वलनं १३१
२६१ यत्र नार्यस्तु १३९
२६२ यस्मै देवा ९६
२६३ यथा वायुं १०५
२६४ यस्यास्ति वित्तं १०७
२६५ यत्र विद्वज्जनो १०७
२६६ यद्यदाचरति ११८
२६७ यत्कर्म कृत्वा ११९
२६८ मन्यन्ते वै १५१
२६९ यथा काष्ठमयो १२४

२४१ मृतं शरीर ४८
२४२ मृगमीन १०४
२४३ मृतो दरिद्रः १४५
२४४ यथा यथा हि पुरुषः ५६
पूर्व १५०
२४५ यस्य वाङ्मनसी ५६
२४६ यथा चित्तं तथा ५५
२४७ यज्ञोऽनृतेन ५७
२४८ यत्कर्म कुर्वतो ५९
२४९ यमान सेवेत ६४
२५० यथा दीपो ६६
२५१ यत्सर्वेणेच्छति ११९
२८१ यान पात्रे च ५४
२८२ यानीन्मान्युत्त ८७
२८३ यादृशैः सन्निविशते १२७
वर्जयेन्मधुमांसं ६१
२८४ या कुन्देन्दु २४
२८५ या दुस्त्यजा ९६
२८६ या देवी सर्व. बुद्धि २५
पर्वत दुर्गेषु १०६
२८७ या देवी सर्व. शक्ति २५
वायुर्यमोऽग्निः २३
२८८ या देवी सर्व. श्रद्धा २५
वायुर्यथैको ३०
२८९ या देवी सर्व. लक्ष्मी २६
वासांसि जीर्णानि ४०
२७० यदा यदा हि ४६
२७१ यत्र धर्मो ४७
२७२ यथा चित्तं ५६
२७३ यस्तु
पूर्व १५०
२७४ यस्तु पूर्वकृतं पापं १५०
२७५ यन्मातापितरौ १००
२७६ यदृच्छालाभ ११७
२७७ यत्र योगेश्वरः १३३
२७८ यस्तु विज्ञानवान् १३५
२७९ यशः सत्यं १४६
२८० यं यं वापि स्मरन् ४१
३१० लज्जां निहन्ति १२८
३११ लाभस्तेषां ८५
३१२
३१३ वरमेको गुणी १०३
३१४ वने रणे शत्रु १४९
३१५ वरं
३१६
३१७
३१८

२९० या देवी सर्व. मातृ विधिहीनम् ८०
२९१ युञ्जन्नेवं सदात्मानं विभर्ति सर्व ४४
२९२ युञ्जन्नेवं सदात्मानं ददाति ७३
२९३ येनास्मिन्कर्मणा ११९
२९४ योगस्थः कुरु ६५
२९५ यो अवन्मन्येत ४४
२९६ योऽनधीत्य १२३
२९७ यौवनं धन १०५
२९८ रसोऽहमप्सु १३२
२९९ रमणीयाश्च १२४
३०० रथस्यैकं चक्रं ११५
३०१ राज्ञ धर्मिणि १३२
३०२ रात्रिर्गमिष्यति १०६
३०३ रूपयौवनसम्पन्ना ७३
३०४ रे रे चातक ११५
३०५ रोगानशेषान २७ ४५
३०६ रोहते सायकैर्विद्धं ९१
३०७ लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणं ८३
३०८ लोभश्चेदगुणेन ९४
३०९ लालयेत् पञ्च १०२
३३९ शरीरं च नवच्छिद्रं १०४
३४० शक्यो वारयितुं ११०
२६ ३१९
६६ ३२०
६७ ३२१ विद्या
३२२ विद्वत्वञ्च ७५
३२३ विद्या नाम नरस्य ७५
३२४ विदेशेषु धनं ९०
३२५ विपदि धैर्य ९३
३२६ विद्या विवादाय १०८
३२७ विज्ञान सारथिं १३४
३२८ विप्राणां ज्ञानतो ११२
३२९ वेदमेव सदाभ्यसेत् ४३
३३० वेदो नारायणः ४३
३३१ वेदाभ्यासस्तपो ४४
३३२ वेदमेवाभ्यसे ४५
३३३ **वेदानां सामवेदोऽस्मि** १३३
३३४ वेदः स्मृतिः सदाचारः
३३५ वेदास्त्यागश्च ५८
३३६ व्यायामपुष्ट गात्रस्य १३६
३३७ वृत्तं यत्नेन ५६
३३८ शरणागतदीनार्त २७
३६८ सत्यमेवा नृशंसं ५१
३६९ सत्यमेवेश्वरो लोके ५२

३४१ शमोदमस्तपः १२५
३४२ शनैः शनैः ६७
३४३ शान्ताकारं २३
३४४ शान्तितुल्यं ९७
३४५ शिरः शार्वं ९४
३४६ शुक्लां ब्रह्म २३
५६
३४७ शूद्रो ब्राह्मणता १२५
३४८ शोचन्ति जामयो १३९
३४९ श्रद्धावाँल्लभते ८२
६२
३५० श्रवणान्मनना ८५
३५१ श्रुतवन्तो ९३
३५२ श्रूयतां धर्म १०९
३५३ श्रोत्रं श्रुतेनैव १२२
३५४ श्रुतिर्विभिन्ना १४३
३५५ षड् दोषाः ९५
३५६ सक्ताः कर्मण्य ११८
३५७ सजातो येन १०९
३५८ सत्यास्तु नित्यं १३८
३५९ सन्तुष्टो भार्यया १३८
३६० सत्वानुरूपा १४०
३६१ सर्वं जिह्मं १३७
३६२ सर्वतः पाणिपादं ३२
३६३ सर्वमङ्गल माङ्गल्ये २६
सुलभाः पुरुषा १०७
३७० समंकाय शिरो ६४
३७१ सर्वं परवशं ११२
३७२ सत्वं रजस्तम १२०
३७३ सत्वात्सञ्जायते १२०
३७४ संमानाद् ब्राह्मणो १२३
३७५ सन्ध्यायां न स्वपेद्
३७६ सर्वेषामेव शौचाना ६०
३७७ सर्वे भवन्तु १५२
३७८ संकल्पाद् दर्शनाच्चैव
३७९ सर्वभूतस्थमात्मानं ६८
३८० सदा मुक्तोऽपि ८६
३८१ सर्वेषामेव दानानां ८८
३८२ सन्तोषं परमास्थाय ८९
३८३ सन्तोषस्त्रिषु ८९
३८४ सन्तोषामृत ८९
३८५ समः सर्वेषु ४६
३८६ सत्येन धार्यते ४९
३८७ सत्यमेव जयते ५०
३८८ सत्यं ब्रूयात्प्रियं ५०
३८९ सत्येन वायुरावति ५०
३९० सुखस्यानन्तरं १०३
३९१ सुखार्थिनः कुतो ७४
३९२

३६४ संकल्पमूलः कामो १२७
३६५ सर्वे तस्यादृता १०१
३६६ सर्वे वेदा यत् ३७
३६७ सहयज्ञाः प्रजा ७८
३९३ सुरामत्स्याः ७९
३९४ सूर्य एकाकी १४४
३९५ स्वशरीरं सदा १३६
३९६ स्वदेहमरणिं ३६
३९७ स्वाध्याय एषां १४३
३९८ स्वाध्यायेन ८०
३९९ हस्तत्राणप्रदा ५४
४०० हतं ज्ञानं क्रियाहीनं १०८
४०१ क्षणे रुष्टः १०६
४०२ त्रिविधं नरकस्येदं ९८
४०३ त्रिभ्य एव तु ५३
४०४ ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा ६५

वाक्य सूची

क्र.सं.	वाक्य	पृ. संख्या	क्र.सं	वाक्य	पृष्ठ संख्या
१	असतो मा सद्गमय	८३	२७	सत्यं वद	५७
२	अनृक्षरा ऋजवः	१४८	२८	सत्यमेव देवा	१४८
३	अति सर्वत्र वर्जयेत्	१४८	२९	हेयं दुःखं	१४८
४	अग्निहोत्रं जुहुयात्	७७	३०	सा विद्या या	१४९
५	आत्मनः प्रति	१४९	३१	स्वयं कर्म	११७
६	ऋतं तपः	८८	३२	संभावितस्य	१४८
७	केवलाघो भवति	१४७			
८	गां मा हिंसीः	१४८			
९	न वित्तेन तर्पणीयो	१४७			
१०	नौर्हवा एषा	७६			
११	परोक्ष प्रिया	१४७			
१२	परिमितं भूतं	१४७			
१३	बलीयसी केवल	१२४			
१४	बुद्धिर्यस्य बलं	१४७			
१५	माता गुरुतरा	१४३			
१६	मातृ देवो भव	५७			
१७	मन एव	१४७			
१८	यज्ञो वै श्रेष्ठतमं	१४८			
१९	यतोऽभ्युदय	४५			
२०	वयं राष्ट्रे जाग्रयाम	१४८			
२१	विद्ययाऽमृतमश्नुते	१४८			
२२	शरीरमाद्यं खलु	१३६			
२३	शौच सन्तोष	६५			

२४ शठे शाठ्यं १४७
२५ स यो ह वै १३४
२६ सत्यं ज्ञानमनन्तं ५१

श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान के अन्य प्रकाशन

1ण यजुर्वेद अन्तिम अध्याय- ईशावास्योपनिषद्

100 पृष्ठों की भूमिका वाली 550 पृष्ठों की यह पुस्तक अत्यन्त उच्चकोटि की है। इसमें अनेक श्रेष्ठ विद्वानों के भाष्यों का उल्लेख किया गया है तथा वेद मन्त्रों, उपनिषदों, मनुस्मृति, रामायण तथा गीता आदि के श्लोकों की सहायता से मन्त्रों की विस्तृत, सरल एवं रोचक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

2ण यज्ञानुराग

इस पुस्तक की 60 पृष्ठों की भूमिका में यज्ञों के विषय में सभी आवश्यक जानकारियाँ देते हुये यज्ञों के महत्व का विस्तृत उल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् प्रार्थना, स्वस्ति वाचन, शान्ति पाठ के मन्त्रों के साथ यज्ञ प्रक्रिया एवं यज्ञ से संबन्धित 250 मन्त्रों का अर्थ सहित समावेश किया गया है। इस पुस्तक की सहायता से प्रत्येक व्यक्ति द्वारा सरलता से विधिपूर्वक यज्ञ सम्पन्न किया जा सकता है।

3ण वेद सुरभि

इस पुस्तक में स्तुति एवं प्रार्थना के साथ साथ कतिपय अन्य श्रेष्ठ वेद मन्त्रों को सम्मिलित करते हुये 250 मन्त्रों को सरल एवं संक्षिप्त अर्थ सहित दिया गया है ताकि प्रत्येक व्यक्ति वैदिक ज्ञान प्राप्त करने के साथ साथ कुछ श्रेष्ठ मन्त्र कण्ठस्थ कर सके।

4ण सावित्री अथवा गायत्री महामन्त्र

विस्तृत भूमिका के साथ 450 पृष्ठों की इस पुस्तक में गायत्री मन्त्र से संबन्धित सभी श्रेष्ठ श्लोकों को सम्मिलित करते हुये विभिन्न विद्वानों द्वारा की गयी गायत्री मन्त्र की व्याख्या के साथ, ब्रह्म, ओ३म्, ब्रह्मचर्य एवं उपासना की वेद एवं शास्त्रों के अनुसार विस्तृत व्याख्या एवं गायत्री ब्राह्मण, गायत्री उपनिषद्, गायत्री रामायण तथा गायत्री मञ्जरी का समावेश किया गया है। पुस्तक के प्रारम्भ में प्रार्थना एवं स्तुति के लगभग 40 श्रेष्ठ मन्त्र अर्थ सहित दिये गये हैं।

ो

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।।

यजु. ३२।१४

हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! देवगण तथा पितर अर्थात् समस्त विद्वान् एवं हमारे पूर्वज तथा श्रेष्ठ वयोवृद्ध रक्षा करने वाले ज्ञानीजन जिस विवेकपूर्ण उत्तम बुद्धि की उपासना करते हैं, उसे प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, उसी उत्तम बुद्धि से आज मुझे मेधावी कीजिये, बुद्धिमान बनाइये। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति परमात्मा को समर्पित है अथवा मैं पूर्ण रूपेण अपने को भगवान् के प्रति समर्पित करता हूँ, शरणागत होता हूँ।

विधुशेखर त्रिवेदी ण्ा।ै ;अण्प्राण्द्ध
अध्यक्ष
पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ
सेक्टर6ठए
वृन्दावन रायबरेली रोड
लखनऊ, 226029

मो.नं.9453849042